

भा० दि० जन परिषद् परीक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत

चरित्र-निर्माण

तृतीय भाग

लेखक तथा सफलनकर्ता—

प० उग्रसेन जैन

एम० ए०, एल एल० बी०, एन्बोकेट
रोहतक

प्रकाशक—

अ० भा० दि० जन परिषद् पब्लिशिंग हाउस,
२०४, दरीवा ब्लाँ, देहली

द्वितीय बार }
{ १००-प्रति }

नवम्बर १९६०

(३)

१८	तरि	६
१९	रत्नत्रय (मनिवर्म)	११
२०	जिनधाणी सुधा (कविता)	१२
२१	जन धर्म की देन	१३
२२	दक्षिण का एक प्राचीन स्थान वारकल	१४
२३	गुजरात का प्रसिद्ध स्थान दाम्बुख्य	१५
२४	रमा का उलटना पलटाना	१६
२५	भारतीय प्राचीन कला की एक मङ्गल ज्योति ध्वज बेलगाल	१७
२६	भगवान् बाहुबलि की तपस्या और कबल्य प्राप्ति (कविता)	१८
२७	जीवनोद्देश्य और उसकी पति	१९
२८	शिक्षा के दोहे (कविता)	१९
२९	नागरिकता	२०
३०	दर्शनक्षेत्र या पयू पण पव	२०
३१	प्राचीन हिन्दी गद्य दर्शन	२०
३२	दीमावली	२०

चरित्र-निर्माण

ततोद भाग

विषय-सूची

— • —

१	इह धन्वना (कविता)	१
२	आमा परमात्मा ✓	४
✓ ३	आमा आत्मापद ✓	८
४	राजस्थान और जैनवीर	१६
५	गुरु महिमा (कविता)	२८
६	अपारपद	३०
७	अज्ञान	३६
✓ ८	श्री मेदिनीशान्तार्य और आमुन्दराय ✓	४६
९	अज्ञानी मन्देन (कविता)	५३
१०	अज्ञान	५६
११	अज्ञान (कविता)	६०
✓ १२	अज्ञानी का जन मान मन्दिर	६४
✓ १३	श्री मेदिनीशान्तार्य और आमुन्दराय ✓	६७
१४	वीर महिमा (कविता)	७०
१५	ईश्वर और मूर्ति	७२
१६	आध्यात्म	८६
१७	इश्वरीय श्री पं० गोपबहादुर बरैया ✓	८४

लेखक का नम्र निवेदन

ध्याये वाटों ! 'चरित्र निर्माण' पुस्तक का यह तीसरा भाग रहा कर तैयार हो गया है, जो आपके हाथ में पहुँच रहा है। तीनों भागों में सरल हिन्दी भाषा में जन-जन तथा जो मन्दित का जोर वाटों को कराया गया है।

विस्तार हो महानुभाव विद्वां सत्तर्पों के तब तथा कविनायों दम
दम पुस्तक में दिग्ग मये ह, पाठ्यगता उनमें साम उठाये ।

इस पुस्तक में जो बातें लिखी गयी हैं, वे सब हिन्दू धर्म के प्रति वही प्रतिपादित की गयी हैं जो कि मुसलमानों के धर्म के प्रति लिखी गयी हैं। यह निम्नलिखित के कारणों से लिखी गयी है।

इन भाषा क लिखने में गु. ह. सप्तमी सुगुनी सिद्धावती जन की ए.
भी टी सप्त प. रवा. द्वाप. जो ग्वा. तीर्ण सा. भी मुख्य समाध्याय
जन हाईस्कूल रोहता में यही सहायता मिली है, तदर्थ वे धन्यवाद क
पात्र ह ।

जिन लेखक महानुभावों ने इन पुस्तक के लिये अपने लेख तथा कवितार्ये भेजे हैं, मैं उनका धन्य न आभाती हूँ। निम्नलिखित पुस्तक तथा पत्रों में कुछ लेखों के लिये मैंने उनसे स्वीकृति तथा क प्रति भी मैं अपने हासिक कृतकता प्रकट करता हूँ।

पुस्तक की लपटारी में तबचा प्रकाशन में बगल तथा उगाही मास्टर
उत्पन्न जी जन, मन्त्री १० जैन परिषद् परीक्षा बाह्य का यथा हाम है,
यह धर्मवान् व प्राप्त है ।

सत में मरी हान्धि भावना है कि जन सज्जन मर हो पाठकगण
इन पुस्तिका से लाभ उठावें और मरे उत्साह को बढ़ावें ।

रोहनप माघ वण्णा पवमी } उपसैन जैन (गोहारा) >
 धीर निर्माण सम्बत् २४८३ } एम ए एन एम बी
 सा० २१ १-२७

द्वितीय संस्करण

नोट — इन सस्वरण में भय ३२ पाठ है । पहले सस्वरण में से तीन पाठ एम्बुवेगन बाड के आगानुसार निवास किये गये हैं ।

सोडनक ३१ ७-१६६०

उपसन्न जैन

(२)

(५)

मरत्य के म-भाग को दिसता रहा है जो हमें,
जो जनम के या मरण के पड़ता न दुख स-दोह में ।
असारी हा त्रैलोक्यदर्शो दूर है बुकलक से,
देवेश वह आकर लग मेरे हृदय के अंक से ॥

(६)

अपना लिपा है निखिल तनुधारी-निबह नेही जिसे,
रागादि दोष व्यूह भी छ तक नहीं मक्ता जिसे ।
जो भानमय है, निरय है, सर्वेन्द्रियो से हीन है,
जिन्देव त्वेश्वर वही मेरे हृदय में लीन है ॥

(७)

ससार की सब वस्तुओं में ज्ञान जिराका व्याप्त है,
जो कम ब-धन हीन, बुद्ध, विगुद्ध, सिद्धि प्राप्त है ॥
जो ध्यान करने से मिटा देता मक्ता कुबिकार को,
देवता वह शोभित कर मेरे हृदय-आगार का ॥

(८)

तम सब जस मूय-विग्रहों को न छ सकता वही,
उम भानि कम-कलक दोषाकर जिसे छना नहीं ।
जो है निरजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है, एक है,
उस आप्त प्रभु की शरण में है प्राप्त, जो कि अनेक है ॥

(९)

वह दिव्य नायक लोक का जिसमें कभी रहता नहीं,
त्रैलोक्य भासक ज्ञान रवि पर है वही रहता सही ।
जो देव स्वात्मा में सदा स्थिर रूपता का प्राप्त है,
मैं हूँ उसी की शरण में, जो देवधर है, आप्त है ॥

(३)

(६)

अवलोकने पर ज्ञान म जिसके सकल ससार ही,
है स्पष्ट दिखता, एष से है दूसरा मिलकर नहीं ।
जो शुद्ध, शिव है शान्त भी है, नित्यता को प्राप्त है,
उसकी शरण को प्राप्त है, जो देववर है, प्राप्त है ॥

(१०)

वशावली जसे अनल की लपट से रहती नहीं,
त्या शोक म मय मान को रहने दिश जियने नहीं ।
भय, मोह नाद विषाद, चिंता भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण म हूँ गिरा, जो देववर है, प्राप्त है ॥

(सामायिक पाठ से)

प्रश्नावली

१—इस कविता को मुखाग्र सुनाइये ?

२—इस कविता म जा इष्टदेव कं गुण वरान किए गए हैं, उन्हें अपने शब्दा मे सुनाइए ।

३—दूसरे सातवें और दसवें छंदा का भावाथ बताइये ।



आत्मा-परमात्मा

— ० —

जन धर्म का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है। पतित में पतित आत्मा भी महात्मा और परमात्मा हो सकता है यदि वह आत्मोन्नति के मार्ग पर दृढ़ चित्त होकर आसक्त हो। जिन जिन आत्माओं ने परमात्म पद प्राप्त किया है वे सब हम जसी साधारण अर्थस्थान ही थीं। शक्ति की अपेक्षा आत्मा परमात्मा में कोई भेद नहीं है, अन्तर केवल इतना ही है साधारण आत्मा में वह शक्ति व्यक्त नहीं हुई है। परमात्मा में वह शक्ति व्यक्त हो गई है। जनधर्म का उपदेश यह नहीं है कि आत्मा परमात्मा का अंग है, कारण यह सिद्धान्त आत्मा की अपनी स्वतन्त्रता पर कुटाशघात करता है। आत्मा और परमात्मा एक ही है परमात्मा भी आत्मा ही है वह उसका उत्कृष्ट स्वरूप है। प्रत्येक आत्मा यदि चाह परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है। यह भाव कितना उत्साहवर्धक है। "प्रत्येक आत्मा परमात्मा का अंग है यह भाव कितना परमार्थना परिचायक है। जनधर्म ही ऐसा धर्म है जो आत्मा की पूर्ण स्वतन्त्रता का उपदेश देता है। इसीलिए जनधर्म का अनुयायी परमात्मा की पूजा तथा उपासना करता हुए भी अपने का परमात्मा का नेवक या दास नहीं समझता। वह यह प्रार्थना करता है कि हे भगवन् ! शक्ति की अपेक्षा में और आप नमान हैं। मैं जानता हूँ कि मैं भी आपसे बतलाए हुए मार्ग पर चल कर आप जैसा हो जाऊँ। यही ध्यान

प्रत्येक आत्मा का परमात्मा उतने में सहायक होता है। यही आत्मा की पूर्ण स्वतन्त्रता जनपद की महान् देन है।

अनादि काल से यह समगरी जीव कर्मों के बशीभूत हावर चतुर्गति रूप ससार में परिभ्रमण करता चला आ रहा है और मिथ्यात्व तथा अज्ञान के कारण निज स्वरूप को न जानकर कम जनित अवस्थाओं में ही तमय हा कर उनके अनुकूल आचरण करते हुए पर समय रूप हो रहा है। यही जीव जब कम जनित अवस्थाओं को भेद विज्ञान के द्वारा अपने निज स्वभाव न जान कर और अपने निज स्वभाव का सम्यक् प्रकार पहचान कर अपने ध्येय की ओर अथात् परमात्म पद की प्राप्ति की ओर भागे बढ़ता है तो रत्नत्रय का आराधन करते हुए पूर्व सञ्चिन्तकर्मों के बंधन को धीरे धीरे परन्तु दृढ़ता पूर्वक काटता एवं नवीन कम बंधन से अपनी रक्षा करता हुआ साधु अवस्था में वह साधक अपनी आत्मा को प्रतिदिन अधिकाधिक निमल एवं शुद्ध करता हुआ आग बढ़ता है। अन्त में एक ऐसा समय आता है कि जब वह साधु ज्ञाना-वरणीय, दशनावरणीय साहनीय एवं अतर्क्य इन चार घातियों कर्मों को नष्ट करके अपने शुद्ध स्वरूप का प्राप्त कर लेता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य का स्वामी अरहन्त परमात्मा या जीवमुक्त परमात्मा हो जाता है। इस जीवनमुक्त (अहं) परमात्मा का ज्ञान मूल जो अब तक कम रूपी मेघा से आच्छादित व विकृत हो रहा था पूर्ण ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित हो उठता है। उसके ज्ञान में ससार के समस्त पन्थ अपने-अपने भूत भविष्यत् तथा वर्तमान काल मय्यधी समस्त गुणा तथा पदार्थों के लिए हुए सुगम मनकने लग जाते हैं। ज्ञान प्रकाश के साथ साथ वह जीवमुक्त आत्मा दिव्य अन्तर्द्विक, अनुपम आनन्द में मग्न हो जाता है। इस अनुपम आनन्द अमतरस का

प्रतिक्षण पान करता हुआ उसमें लीन रहता है । ससार के लाभार्थ उस जीव-मुक्त परमात्मा की दिव्य वाणी का संचार होता है, जिसके ध्वनि से अनेक प्राणियों को ज्ञान की प्राप्ति होती है और निज आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होते हैं ।

उपरोक्त जीव-मुक्त अवस्था में रहते एव ससार के अनेक भय जीवों का बल्यारण करते जब नाम, आशु, गोत्र तथा वदनीय इन चार अघातियाँ बर्णों का भी नाश हो जाता है तो आशु बर्ण क्षीण हो जाने पर उसकी परम शुद्ध आत्मा भौतिक शरीर को तजकर कम बधन से सबंधा मुक्त हो कर शोक के शिखर पर विराजमान हो जाती है जहाँ वह शुद्ध सिद्ध परमात्मा सदा बलिये अनुपम दिव्य आनन्द में मग्न रहता है एव उसकी अनन्त दिव्य ज्ञानज्याति में ससार के समस्त पदार्थ अपने अनन्त गुण व पर्यायों सहित आलोकित होते रहते हैं, कम बधन से सबंधा मुक्त हो ज्ञान पर बार्द ऐसी शक्ति शेष नहीं रहती जो उस परमात्मा को फिर नवीन कम बधन में डाल सके । उनके शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में विचार उत्पन्न कर सबे या उसकी दिव्य आत्मिक शक्तियों का आच्छादित कर सके । इस प्रकार वह सिद्ध परमात्मा अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में शास्वत, मग्न एव विराजमान रहता है । सिद्ध अवस्था में यह आत्मा वृत्तकृत्य हो जाता है, जो कुछ करना या बह कर चुकता है और कुछ करना शेष नहीं रहता । जिस प्रकार आकाश रज्युक्त नहीं होता अपो स्वभाव में स्थिर रहता है, किसी के द्वारा घाता नहीं जाता और अत्यन्त निमल होता है उसी प्रकार मुक्तात्मा अपनी निरावण अनन्त शक्ति सहित अपने अनन्त दान तथा अनन्त ज्ञान स्वरूप को लिये परम ज्ञानानन्द में अतिशय मग्न निरन्तर ही लोक के शिखर स्थित मोक्ष स्थान में प्रकाशमान होता है । कहा है—

लोकाग्र शिखरावासी सबलोर शरण्यक ।
 सब देवाधिको दवा ह्यष्टभूति दयाध्वज ॥
 अद्भुतोऽनभेद्यश्च सूक्ष्मो नित्या निरजन ।
 अजररोहामरश्चव शुद्ध सिद्धो निरामय ॥
 अक्षयोऽह्यव्यय शान्त गान्ति कल्याणकारक ।
 स्वयम्भू विश्व दृश्या च कुशल पुरपोत्तम ॥

(आत्मस्वरूप)

अर्थात्—सिद्ध परमात्मा साक्षात् शिखर पर वास करते हैं, सम्पूर्ण ससार के प्राणियों के लिये शरणभूत हैं । सब देवा के स्वामी महादेव हैं । सम्यक् आदि अष्टगुणधारी आत्मा भूति हैं । दया की ध्वजा हैं छद रहित हैं, भदभाव से रहित तथा अतीन्द्रिय और सूक्ष्म हैं । अविनाशी हैं । कमाञ्जन रहित निरजन हैं, अजर हैं, अमर हैं, शुद्ध हैं, सिद्ध हैं वाधारन्ति हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, शान्त हैं, गान्ति व कल्याण के कर्ता हैं, स्वयम्भू हैं विश्वदर्शी हैं, मंगलमय हैं, परमात्मा हैं । सिद्ध साधन में १० जगत्त्रिगोर जो मुस्तार लिखते हैं—

Matam Daruk

आवागमन विमुक्त हुए, जिनका करना कुछ शेष नहीं ।
 आत्मलीन, सब दोष हीन, जिनके विभाव का लेश नहीं ॥
 राग द्वेष भय भुक्त, निरजन, अजर अमर पद के स्वामी ।
 मंगलभूत, पूरा विकसित, सत् चिदानन्द जो निष्कामी ॥
 ऐसे हुए अनन्त सिद्ध श्री वत्तमान हैं सम्पत्ति जो ।
 आगे होग सबल जगत में, विबुध जनो में मस्तुन जो ॥
 उन सबका नतमस्तक हा, मैं वदूँ तीना काल सदा ।
 तत्स्वरूप की शीघ्र प्राप्ति का, इच्छक होकर सहित मुदा ॥

प्रश्नावली

- १—आत्मा से परमात्मा बनने का क्रम वर्णन कीजिए ?
 - २—परमात्मा के भेद वर्गाएँ, उनमें क्या अन्तर होता है ?
 - ३—परम शुद्ध गिद्ध अवस्था का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए ?
 - ४—"आवागमन विमुक्त हुए ~ "
- "तत्त्वरूप की गीघ्र प्राप्ति का इच्छक होकर सहित मुदा"
उपयुक्त छंदा का भावाथ समझाइए ।

जीवन-परिचय

युग प्रवर्तक आद्य-तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव

(स — श्री ५० मुपतारविह जन 'सि' बी० ए० बी टी० साहित्यालयार)

— ० —

इस युग के आद्य प्रवर्तक तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव हैं। भोग भूमि के बाद वनभूमि की सम्पूर्ण रचना और वन-व्यवस्था आपने की थी। भगवान् स्वयं मधुप्रथम आत्म-व्यापारकारी मार्ग पर चले तथा सम्पूर्ण जगत का इसका पथ प्रदान कर गए। इस अनादि सत्तार में अनादि काल से ही धर्म प्रवर्तक (तीर्थङ्कर) होते आये हैं तथा अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं। इस बार मधु प्रथम तीर्थङ्कर (धर्म प्रवर्तक) भगवान् ऋषभदेव जी हुए हैं। उनको मोक्ष गये ७६ अरब प्रमाण वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भगवान् ऋषभदेवजी के जीवन की झलक यहाँ जन शास्त्रानुसार दी जा रही है।

आदिताम्र-ऋषभदेव के पिता १४ व कुसुवर श्री नाभिगय और माता श्री मरुदेवी थी। मरुदेवी जम्बू द्वीप के ऐरावत क्षत्र के प्रथम तीर्थङ्कर के पिता श्री जुगलिनी श्री जा सौधर्मेंद्र द्वारा लार्ड जाकर श्री नाभिगय को विवाही गई थी। भगवान् ऋषभदेव आपाङ्क कृष्णा द्वितीया को गम म आय। आपक गर्भ में आने के ६ मास पहले से ही कुपेर न राजभवन में नियन्त्रित

तीन बार रत्न वर्षा करने प्रारम्भ करती थी, जो आपने जन्म पयत्न इसी प्रकार होनी रही। गन्ध म आने पर माता मरुदेवी ने १६ शुभ स्वप्न देख निकला अन्तर्गत शुभ फल उनके पति श्री नाभिगन्ध न अपने अधिष्ठान में जाकर मरुदेवी को सुनाया और कहा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीवन मयाय सिद्धि से चलकर तुम्हारे गन्ध म धाया है और वही होहार प्रथम तीर्थंकर है। यह सुनकर उह परम ह्य प्राप्त हुआ। इन्द्रादिव देवा ने भी मयोध्या भगवान् की जन्मभूमि में धापर आयानन्द पूयक भगवान् का 'गन्ध मन्त्रालय' मनाया।

पूव जन्म के उत्तम सम्पार और तपोरत्न से भगवान् के गर्भावस्था ही से मनि श्रुति और अधिष्ठान प्राप्त थे जिन्हें प्रभाव से इस समय माता मरुदेवी गूढानिगूढ प्रज्ञा के उत्तर भी बड़ी सुगमता के साथ दे दती थी, भगवान् के गन्धवान के समय अय स्त्रियों के समान माता का शरीर न नाशुन पीन या पीडित हुआ, न उदर-वृद्धि हुई न त्रिवली भग हुई और न स्तनों के मुख पर कान्तिमा ही आई। माता मरुदेवी के गरीराङ्ग और मुखावृत्ति मय पवार सर्वाङ्ग सुन्दर बने रहे।

भगवान् का जन्मोत्सव

शुभ मिति चत्र वृश्चा ६ के प्रातः काल में श्री श्रृपभदेव का जन्म हुआ। इस समय सम्पूर्ण त्रिलोक में एक ऐसी आनन्दमयी विद्युत् लहर फैली, जिससे प्राणीमान (तारकी जीवो तक) ता शरण भर के लिये अप्रुव आनन्द प्राप्त हुआ। इन्द्रादिव देवा के आसन अवस्मात् वम्पायमान हुए। उन्होंने अपने अधिष्ठान से भगवान् का जन्म हुआ जान, मयोध्या में आ, भगवान् का सुमेरु पवत पर ले जाकर उनका 'जन्मानिपक' किया। तदनन्तर अतिशय प्रसन्नता पूयक सब देव नृत्य गानादि महोत्सव के साथ मयोध्या-

पुरी में लौट आए और माता पिता की भी बहुत प्रशंसा स्तुति की। श्री नाभिराय न भी इस महा पुण्याधिकारी पुत्र का जन्मोत्सव बड़े ठाठ से मनाया। जिसमें इन्द्र ने १२३ करोड़ जाति के देवोपनीत वादित्रों की अत्यन्त सुरांनी और कणत्रिय तान पर आनन्द नाटक दिखला कर ताण्डव नृत्य किया। इन्द्र ने ही भगवान का नाम श्री ऋषभदेव रखा।

बाल्य काल

बालक ऋषभ बाल ब्रीडा तथा चित्त विनाद करता हुआ दिन प्रतिदिन द्वितीया के चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगा। भगवान का किसी भी गुरु से किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता न हुई क्योंकि वे स्वयं ही सब के गणक और गुरु रहे। उनमें बुद्धि नैपुण्य, दीपनशिला और कला चानुय आदि अनेक गुण जन्म ही से विद्यमान थे।

आर्हस्य-जीवन

बौद्धिक काल व्यतीत होने पर भगवान ऋषभ न जब युवावस्था में पगपण किया तब पिता नाभिराय ने उनके समस्त विवाह प्रस्ताव रखा। दूसरे सब मनुष्यों को अपने भाई चारित्र्य के अनुकूल चलाने तथा पूज्य पिता की आज्ञा का उत्प्रेक्षण न करने के लिये पिता ने अपने केवल ३० अक्षर का उच्चारण करके अपनी स्वीकृति प्रदान की। वच्छ और महावच्छ नामक दो राजाओं की यगम्बी तथा सुनंदा नाम की दो महासती मुनीला और मुलमणा व रूपवती कन्याओं के साथ आपका विवाह कर दिया गया।

यशस्वी के उदर से 'भरत' आदि १०० पुत्र और ब्राह्मी नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। सुनंदा ने बाहुबलि तथा सुदरी दो

सन्तान उत्पन्न हुई। इनमें भरतनो प्रथम चक्री हुए और उहीके नाम पर यह देश 'भारतवर्ष' कहलाया तथा उन्होंने ही 'ब्राह्मण' नाम का चौथा वर्ण स्थापित किया। ब्राह्मणों प्रथम कामदेव कहलाये। आदिनाथ के सभी पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे और भगवान् ने ही अपने सब पुत्र पुत्रिया को सब प्रकार की शिक्षा दी थी, परन्तु विशेष रूप से ब्राह्मों को अक्षरावली अर्थात् (इसी कारण इस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि) सुंदरी को अर्वागणित और दाना का ही अर्थ सब स्त्रियोपयोगी शिक्षा दी थी। भरत ने गज्याचिन्त 'नीतिशास्त्र' विष्णु रूप से पढ़ाया था।

तीसरे काल के अन्त में कल्प बर्षा को गट्ट होने पर जब प्रजा व्याकुल हुए तब नाभिराज के पास आई तब उन्होंने प्रजा के मुखियाओं को श्री अष्टभद्र देव के पास जान की आज्ञा दी। श्री अष्टभद्र देव ने उनके रहन-सहन का यथाचित प्रवचन कर दिया। अनेक राज्य स्थापित किए। तब गजामा को नीति-शास्त्र की शिक्षा दी और प्रजा को राजनीति के अनुबल चलने के लाभ बताए और तदनुसार आचरण करने का कहा।

वर्णों की स्थापना

माथ ही प्रजा को आजीविका सम्बन्धी अग्नि, मणि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन षट् कर्मों की शिक्षा देकर सुगमता के लिए उसे (प्रजा को) निम्न प्रकार तीन वर्णों में विभाजित कर दिया।

शस्त्र धारण कर अग्नि (तन्त्राग) कर्म द्वारा आजीविका करने वाले क्षत्रिय कहलाए। स्याही में शुद्ध और सुंदर अर्थात् लेखन किया कर मणि (स्याही) कर्म द्वारा या कृषि (खेती) कर्म द्वारा वाणिज्य (व्यापार) द्वारा या पशुपालन द्वारा

आजीविका करने वाले आय्य ऊय ऊरज या वणिक और पश्चात् वश्य नाम मे प्रसिद्ध हुए । नृत्य गानादि विद्या या कला सिखाने द्वारा अथवा शिल्प (दस्तकारी) द्वारा आजीविका करने वाले अथवा जो क्षत्रिय और वणिक् की किसी न किसी प्रकार की सेवा सुश्रूषा कर अपनी आजीविका करते थे वे जघन्यज, अथवा बपल और बाद मे गूढ़ कहलाये । इस प्रकार भिन्न भिन्न वर्गों के आचार पर भगवान् न वण व्यवस्था कायम की ।

आद्य गामक ऋषभदेव

कुछ बाल पश्चात् पट्टर्मों की प्रवृत्ति से जब प्रजा की स्थिति सुधर गई और मत्र लोग गान्ति स रहने लग, तब एक दिन शुभ मुहूर्त में बट समारोह के साथ भगवान् का राज्याभिषेक किया गया इस समय इनके पिता श्री नाभिराय ने सब उपस्थित मण्डली के सम्मुख अपने मन्त्र का मुकुट भगवान् के मस्तक पर रखत हुए यह कहा कि आज मे समस्त मुकुट-बद्ध राजाओं आदि के पालन करने वाल भगवान् ऋषभदेव हैं, मैं नहीं हूँ ।

अपने पिता श्री नाभिराय से राज्य पाकर आदि ब्रह्मा श्री ऋषभदेव ने तीना वर्णों के लिए अपनी मर्यादा की सुदृढ़ता से पालने के लिए ऐसे नियम बनाए जिसे सब काय भली प्रकार सुगवस्थित रूप से चलने रहें । इसी समय भगवान् ने हरि, अकम्पन वाक्य और भोमप्रभ नाम के चार बड़े क्षत्रियों को बुलाकर उनका "महाराज" पद दिया और उनके आधीन एक सहस्र राजा नियत किए ।

वण और उपवशों की स्थापना

हरि ने अपना नाम हरिकान्त रखा और हरिवंश का मूल

नायक कहलाया । श्वम्भर से नागवश, राक्षस से उग्रवश और मोमप्रभ से घुरवश की मस्थापना हुई । जिस समय बलवृक्ष टूट हुए थे उस समय भगवान् ने मनुष्यों को प्रथम ही 'इन्दुवश' ग्रहण करने का उपदेश दिया था । अतः लोग उन्हें 'इन्दुवान्' कहने लग गये और उनका वंश 'इन्द्रावश' वंश कहलाया । पश्चात् इन्दुवान् वंश की दाशागार्ह सूर्यवश और चन्द्रवश के नाम से प्रसिद्ध हुई । श्री ऋषभदेव ने पुत्र भरत वक्रवर्ति के ज्येष्ठ पुत्र अककीर्ति के नाम पर सूर्यवश और बाहुवर्ति के ज्येष्ठ पुत्र मोमकीर्ति के नाम पर चन्द्रवश कहलाया ।

भगवान् का तप कल्याण

भगवान् ऋषभदेव जब लगभग २० लाख वर्षों कुमार अवस्था में और ६३ लाख वर्षों राज्य योग में अर्थात् कुल ४४४५ लाख २६ पद्म वर्ष व्यतीत कर चुके और लगभग १ लाख वर्ष की आयु जब शेष रह गई तब एक दिन पूरा राज्य विभूति समुक्त राजसभा में आप रत्नजडित सिंहासन पर विराजमान थे । उस समय नीलाजना नाम की एक अम्बरा यहाँ नृत्य कर रही थी, वह सबके देखते-देखते ही मृत्यु को प्राप्त हो गई । भगवान् अम्बरा को समान ही जगत की माया तथा राज्य बन्धन आदि को दण्डभङ्गुर विचारते हुए तुरन्त ही भोगों से विरक्त हो गये । उसी समय अपने नियोगानुसार 'तप कल्याण' की पूजा के लिये लोकार्तिव देव आए और भगवान् की बहुत-बहुत प्रकार से स्तुति कर तथा उनकी पूरा रूप से दृढ़ता के साथ तपस्चरण ग्रहण करने के सम्मुख कर अपना स्थान को लौट गये । तत्पश्चात् इन्द्र आदि और सब देव आए उन्होंने तप कल्याणक उत्सव किया । क्षीर सागर से पवित्र जल लाकर भगवान् को अभिषेक किया और उनकी वस्त्राभरण पहनाए ।

उस समय भगवान् ने अपने अष्ट पुत्र भरत को सम्राट पद और बाहुबलि का मुरराज पद दिया तथा दूसरे पुत्रों का भी अपनी सम्पत्ति का यथावश्यक बंटवारा कर दिया। तब आपने अपने पिता नाभिराय तथा माता भम्बेकी आदि वृद्धस्त्रीजों से पूछकर धन वृद्धि ६ को नमन दिगम्बरी नीमा धारण करली। आपके माय-माय आपके मवन चार हजार धन गणना में भी गिना समझे वेचन उनके अनुकरण रूप मुनि दीना धारण की। ध्यान योग ही विगुह परिणामा के धन में भगवान् को मन परम शांति प्राप्त हो गया।

पुण्य मय प्रक्षय तृतीया

श्री ऋषभदेव ६ माग की प्रतिष्ठा करने ध्यान में बैठे थे। किसी का आहार विधि न जानने तथा भगवान् का अभिप्राय न समझ मरन के कारण उनका और ६ माह से अधिक तप आहार न मिला अब दिन यह महान् तपस्वी विहार करते हुए हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ का राजा सोमप्रभ के छोटे भाई श्रयास को भगवान् का दर्शन करते ही जानि स्मरण हो जाने से मुनियों को नयधामर्षि पूर्वक गुह्य आहार दान की विधि स्मरण हो आई। अतः श्रयास ने भगवान् को निरन्तराय इशुराय का शुद्ध तथा विधिपूर्वक आहार कराया। तपश्चरण करने के टीक १३ मास ६ दिन पश्चात् शुभ मिति वनाम्ब गुरु ३ को आहार हुआ। उसी दिन में वसारा मुनी ३ 'अगम तृतीया यथवा अगम तीज' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

हजार वर्ष का घोर तप

निरन्तराय आहार ही जान के पश्चात् भगवान् फिर वन में जाकर तप करने लगे। वे माघ के २८ मूल गुण तथा ८४ शास्त्र उत्तर गुरुओं को बड़े प्रयत्न से पालत थे। इस प्रकार और

तपश्चरण करते हुए तथा अनेक देशों में विहार करते हुए एक दिन आप पुरिमताल नगर के पास शबट नाम के उद्यान में पहुँचे और वहाँ बट बुढ़ा के नीचे एक स्वच्छ शिला पर पयवासन जमाकर ध्यानाब्ध हो गये । अब आप क्षायिक श्रेणी में गुण श्रेणी निजरा करते हुए अतिशय विगुद्ध परिणामों द्वारा धानिया कर्मों की ४७ तथा नाम कर्म की १३ और आयुवर्म की तीन, कुल ६३ प्रकृतियाँ का क्षय कर १३ व गुणस्थान में जा पहुँचे । अब उनको निमल आत्मा में लोकालोक की तथा तीनों कालों के त्रलोक्यवर्ती सबद्रव्या की अनन्तानन्त पर्याया को युगपत् प्राप्ति परम वाल केवल ज्ञान का प्रादुर्भाव शुभ मिति फात्गुण कृष्ण ११ का हो गया । आपने कुल २८ दिन व्रम १००० वर्ष पर्यन्त तप किया ।

कल्याणमयी अहतावस्था

भगवान् का अहत पद प्राप्त होते ही बिना तार की विद्युत् सहरों के समान प्राकृतिक रीति में जगत् भर में निमिष मात्र के लिए एक आनन्द की लहर व्याप्त हो गई । जन्म समय के समान इस समय भी भव देहा का भगवान् के केवल्य पद पाव की सूचना मिल गई । उसी समय सौम्य द्वाद्व की आत्मा से १२ याजन के व्यास का एक यत्तानार अत्यन्त सुन्दर सभा मण्डप रचा गया । इसी सभा मण्डप का नाम 'समवसरण' है, क्योंकि यहाँ पर अब मनुष्य, नियन्त्र सब कोई समान रूप से आ आ कर भगवान् के दान पूजन स्तुति करने और सत्याथ मोक्षमाग प्रमाण धर्मोपदेश सुनने का सम समान रूप से अवसरगु-अवसर प्राप्त करते थे ।

समवसरण में सभी देव, मनुष्य, नियन्त्र आदि आकर भगवान् को नमस्कार करके अपने आगे काठी में यथास्थान बैठते जाते थे ।

भगवान् की दिव्यध्वनि द्वारा प्रतिदिन चार बार घर्मोपदेग होता था, जिसकी सुनकर अनेक जात धर्म माय पर वगडर अपने जीवन को सफल बनाते थे । इस ग्रहण अवस्था में आपन समस्त आयुधों में विहार करके असस्यान जीवों का १०० वय-४१ दिन वय १ लाख पुन वय पञ्च वत्माण किया ।

भगवान् की अनगरी नित्य वाली की श्री वपभसेन गगधर दश न अपन पवित्र स्वच्छ और दिव्य ज्ञान बल में द्वाश्व भया और १४ प्रकीर्णरा में विभाजित करके प्रधर बद्ध कर लिया जिसमें अनजान भव्य वाली कबली भगवान् की अनुपम्यनि में भी मदर लाभ उठाते और ग्राम कयाग करत रहते हैं ।

श्री ऋषभदेव का मोक्ष कल्याण

वेवलभान प्राप्त हान के समय में पीप गुह्य १५ तक उपदेग दे दकर आप जीवा का निरंतर मदभाग पर लगात २२ । तत्पश्चात् समवगारण की रचना विघट गई और वाली का खिरता रुक गया तब भगवान् ऋषभदेव ने कंवाश पत्र पर योग निर्गोध प्रारम्भ कर दिया । चौदह दिन माघ कृष्ण १४ के गुप्त मुहूर्त में पूव मुख पद्यासन लगाए हुए भगवान् न मृदम दिया प्रतिपानि नाम के गुह्य ध्यान से मन वचन, काय इन तीन यागा का पूरा निरोध करके अयोग केवलि नाम का १४ वां गुणस्थान प्राप्त किया ।

जितने समय में अ, इ, उ ऋ ए इन पाँच नपु स्वरों का उच्चारण होता है उतनी देर के अन्तमुहूर्त काल में व्युपरन क्रिया निवृत्ति नाम गुह्य ध्यान से अन्तिम समय से पूव के समय में अयातिया कर्मों की शप ८१ प्रकृतिया में से ७२ को और अन्तिम समय में शेष १३ प्रकृतियों को नष्ट करने श्री ऋषभदेव

ममय मात्र काल में गिद्धालय में जा विराजे और ईश ।
 निवाणपद प्राप्त करके दायिन १—गम्यकर २—अनन्त प्राप्ति
 ३—अनन्त दत्ता ४—अनन्त वीर्य ५—सूक्ष्मत्व ६—अवगाहनत्व
 ७—अगुरुत्व ८—अव्यावाध ९। इन अष्ट मुख्य तथा अन्ता
 त्ना उत्तम गुणयुक्त नित्य निरजा ज्योति स्वप्न हो गये।
 उमी भमय इन्द्रादिय देवान् आकर भगवान् का निवाण
 महोत्सव विधिपूर्वक बड़े ममारोह के साथ मनाया।

प्रश्नावली

- १—भगवान् ऋषभदेव का जन्म कब हुआ ?
- २—भगवान् ऋषभदेव के माता पिता ने बार में भाग क्या जानते हैं ?
- ३—भगवान् का जन्मानिपत्र महात्मान् जिसने वहाँ और कसे मनाया।
- ४—भगवान् के गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?
- ५—भगवान् के पितन पुत्र-पुत्रियां हुई और उन्हें भगवान् ने किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की ?
- ६—भगवान् ने वण स्थापना किस की और वणों की उत्पत्ति कैसे हुई ?
- ७—भगवान् का दीक्षा क्याणक कब और कसे हुआ, अक्षय सुनाया कसे प्रसिद्ध हुई ?
- ८—भगवान् ने कितने दिन सपस्या की, कबलज्ञान क्या हुआ ?
- ९—भगवान् ने अहताकम्पा का वणन अपन शब्दाम कीजिए ?
- १०—भगवान् का निर्वाण कब हुआ ?

गाह भी ध्वराया परन्तु अपनी वीर माता के प्रोत्साहन पर उसने उदयसिंह का पना की गाँव में उठा लिया और प्रण किया कि अपनी जान पर खेल कर भी उदयसिंह की रक्षा तथा पालन पोषण करेगा। यही हुआ उदयसिंह गुम्बलमर के दुर्ग में ही प्राणाशाह के घराने में पनकर बड़ा हुआ और अन्त में बनबीर को मार कर अपना राज्य सम्भाला।

महाराणा उदयसिंह ने भारमल जी का अपना राज्य का प्रधान बनाया। भारमलजी ने अपने आयुकाल में मेवाड़ राज्य का समस्त कार्यभार उन्हीं चतुर्गई एवं सफाई पूर्वक चलाया। इनके दो पुत्र हुए मामागाह और ताराचन्द। उदयसिंह के बाद महाराणा प्रतापसिंह ने राजगद्दी का सुशासन किया और इन्होंने मामागाह को अपना प्रधान मंत्री बनाया। मामागाह और इनके भाई ताराचन्द गाना ही बड़े नीति निपुण, गुरकीर योद्धा और परम राजभक्त थे। हल्की घाटी की सूनी लड़ाई में दानो भाग्या ने मेवाड़ के झण्ड के नीचे मुगल सेनाओं से घेर युद्ध किया इसमें ताराचन्द घायल हो गया परन्तु इस युद्ध के समाप्त होने पर दानो भाई युद्ध स्थान से उठे और कुम्भनमर पहुँच कर एक राजपूरी सेना एकत्रित करके मालिन देग पर जड़ाई कर ली और वहाँ के यवन सूतार से पश्चीम ताल रपया और तीन हजार मोन की अग्नियों दण्ड स्वरूप बसूत की।

इसके कुछ समय बाद जब मामागाह को यह खबर मिली कि महाराणा प्रताप यवनो की टिड्डीदल फौज से बेधन होकर मेवाड़ छान कर मित्र की ओर रेमिस्तान में जा पहुँचा है तो उसे अत्यन्त खल हुआ और जब मामागाह से न रहा गया तो वह घोड़े पर सवार होकर महाराणा की खाज में चल पड़ा। इतिहास बताना है जब मामागाह की महाराणा से भेंट हुई तो दानो की छात्रा में देग प्रेम तथा खद के भाँसू उड़ निकल।

पधारें तो महाशायी मर्यामिह ने एग बड़ी तमा तुलाई
उनका पदम मुता मार हाँसा मताप प्रसन्न किया ।

तालागाह ता मुपय बसागाह भी उछा बलवान् और
पराक्रमी पुरुष था । ऐसे महाशायी मर्यामिह ने मवाह मज का
प्रधान बनाया । राज्य का समस्त कारबार तलागाह ने वषों
तक यही अनुराध और मुतामता पत्रक बजाया और धाने भाग्य
काम में ही बगैला भया की सामान में गुजरान देना में मनुष्य
जी ये प्रसिद्ध जग मन्दिर का पुरखार मगया ।

पन्ना का नाम किंगन नही सुना होगा । राज्य का नाति
उदयसिंह अभी बच्चा ही था । पन्ना की देव रंग में पलता था ।
राज्य का कारबार बनवीर चलाना था जो कि एक बानी का
पुत्र था । बनवीर को यह धुन मगार टूट कि उदयसिंह को जान
से मार कर अटल राज्य करे । एक दिन पन्ना महल में उदयसिंह
के पालन के काम बड़ी थी, कि मिना गाई बागा हूमा भाग्य
और सूचित किया कि बनवीर नगी तलवार लिए महल में
आ गया है । पन्ना ममक गई और उदयसिंह का जो मो रहा
था गाई का देवर महल से बाहर भज दिया और अपने बच्चे
को उदयसिंह के कपड़े पहना कर उसे पालन में सुला दिया ।
बनवीर ने आते ही पालन में मोते हुए बालक का तलवार से
मार डाला । बनवीर के महल में बापिस आते ही पन्ना भी
महल से निरुली और उदयसिंह का नाई में अपनी गोद में लेकर
उनकी रक्षा के प्रबंध के लिए चन पड़ी । वह उदयसिंह को
लेकर मेवाड के बड़े से बड़े सरदार के पास पहुँची और प्राधना
की कि उदयसिंह को अपनी शरण में ल ल परन्तु बनवीर के
भय से एक भी इसके लिए तयार नहीं हुआ । अन्त में पन्ना
निराग हाकर कुम्भलमेर के जन मवनर आशाशाह के पास
पहुँची और उनसे भी यही वितती की । पहल ता आस

बचना के दाँव मट्टे किए घोर राजस्थान की रक्त-रक्षा का बचाव । इस स्वतंत्रता संधि में भी श्यामशर्मा ने पुरा-पूरा भाग लिया । सार-रज के अन्तर्भाग का सार पाकर उमर गरीर में काय की रक्षा नष्ट गई और उमर बचना में भारी बन्धावन का हृदय-रक्त बह गया घोर तनसार मार ॥ बाहर रिकारी । काम नष्ट किया है कि मिथवी श्यामशर्मा ने मिथान्धिता के नाक के चक्कर में ही समय में बचो पर कई छाप से पाठ छाकड़ों किया घोर नारंगपुर नाम मराज, माँद मार नन्दो का जीत दिया । बचो की अनगिनत केना का इन इनको में मार दाँव घोर बच गुप्ते मारकर नाक किए । दाँव मात्र मिलत है—कि बचो का रक्षा भय रक्षा हुमा घोर उमर रक्षा भयान्त मरी कि उन्हें बचो की रक्षा की ना माहिरत रक्षा घोर उह जगह जगह छादकर भाग गए । इन दाँव का गुप्त कर आ घन रक्त-रक्त हुमा यह मर महाशर्मा राजगिरि के दाँव में भय दिया गया ।

दयालशर्मा राजकुमार जयगिरि के माहिर रक्त रक्त रक्त के पाठ का धमक मार माहिरा घत्रीम की मनास नाक दिया । इन मुद्ध में राजपूत रक्त वीरता में लड़े कि मुक्त मना किए हुम दवा कर नाकी । राजा भागते हुए मुद्धा का नाट डाला गया । अजीम मुक्तिन ग अपनी जान बचा कर भागा घोर घोरगजव के पापी विनाश घर के घरे रह गए । रक्त स्वतंत्रता मुद्ध में मिथवी दयालशर्मा ने जा अथर्व दाँव-भक्ति दिललाई, यह दशिहाम में सदा के लिए अमर रहनी । महाशर्मा राजगिरि के दाँव उनसे उत्तराधिकारी भा जना को राज्य के बड़े में बड़े पना गर निष्कृत करत रह । इसमें नायकी के धात्र मेवाड के बड़े प्रमिद गन्धार हुए है । इन बच के पूषत्र मोर्तकी राजपूत के निहान दाहवी गताली में अनघम ग्रहण कर लिया था ।

भामाशाह ने अपने समस्त काय की कुस्त्रियाँ महाराणा के चरणों में अर्पण कर दी और मेवाड़ के पुनर्गठन के लिए इतनी दंड भरी विनती की कि महाराणा तैयार हो गया और भामाशाह के विशाल कोष की सहायता से चित्तौड़ तथा माडलगढ़ के सिवाय सम्पूर्ण मेवाड़ को मुगल में जीत लिया और यवन सेनाओं को मार्गदर्शक दश से बाहर धुँध दिया। वीर भामाशाह का देहान्त संवत् १६१६ में हुआ। इनके बाद इनकी चार पीढ़ी तक मेवाड़ का प्रधान पद भामाशाह के उग में रहा।

मेवाड़ के महाराणा राजसिंह और गजेन्द्र के समयकालीन थे। इन्होंने सिधवी दयालदास को मेवाड़ राज का प्रधान बनाया। सिधवी जी के पूज्य ओमनाथ धर्मिय व जितान जनबम ग्रहण किया था। दयालदासजी को राज्य का यह महान् पद अर्पित अपूर्व राज्य भक्ति के कारण मिला। महाराणा की एक छोटी रानी ने अपने ब्राह्मण पुरोहित के हाथों महाराणा को विष देकर मरवाना चाहा, इस प्रपञ्च का गान दयालदास का होने लूँ उन्हें बहुत दुःख और चिन्ता हुई कि अगर यह प्रपञ्च सफल हुआ तो इतने बड़े राजनीतिज्ञ और धूर्तवीर महाराणा की जान जाती रहनी, इसलिए उन्होंने अपनी जान जोखा म डाल कर महाराजा को खबर दे दी इसलिए महाराणा ने तुरन्त गनी और पुरोहित दोनों को प्राण दान दिया और दयालदास की देशभक्ति से प्रसन्न हो उनको अपना अग्रक्षक बनाया और उनके पराक्रम वीरता तथा राजनीति से प्रसन्न होकर उन्हें राज्य का प्रधान बनाया।

राजस्थान के लिए यह बड़े मुकट का युग था। और गजेन्द्र न राजस्थान पर अपना टिहरीदल सेनाओं को लेकर चढ़ाई की और राजपूतों का मुसलमान बनाने का निश्चय किया, इस मुकट से बचने के लिए मेवाड़ तथा मारवाड़ के सिमोदिया और राठौरी

यवना ने दान खट्टे किए और राजस्थान की स्वतन्त्रता को बचाया। इस स्वतन्त्रता संग्राम में भी दयानन्दजी ने पूरा पूरा भाग लिया। औरंगजेब के अत्याचारों की खबर पाकर उमके शरीर में क्रोध की ज्वाला भड़क गई और उसने यवनों में भारी बदला लेने का हठ मकसद कर लिया और नलवार म्यान से बाहर निकाली। वन-टांड जियाते हैं कि मिथली व्यापक ने निमादिया सेना को लेकर एक ही समय में यवना पर कई तरफ से घात छाड़मग किया और सारंगपुर दवात मराज, माण्ड और चंदगो का जीत लिया। यवना की धनगिनन सेना का इन जगहों में भार डाला और बंध खुले मारकर भगा दिए। टांड माहय निमित्त हैं—कि यवना का अतना भय उबार हुआ और उनमें अतनी मगदह मची कि उन्हें अपने गीरी उच्छा की भी मोहब्बत नहीं और उन्हें जग जगह छानर भाग गए। इन दंगा को सूट पर जो धन एकत्रित हुआ वह सब महाराणा राजमिह के कोप में भज दिया गया।

दयालदास राजकुमार जयमिह के साथ घूम फिर कर चित्तौड़ के पास जा घमक और शाहजाना अजाम की सेना से बाहा लिया। इस झुड़ में राजपूत इस वीरना से लड़े कि मुगल अना फिर दुम दबा कर भागी। हजाना भागते हुए भुगुला का काट डाला गया। अजीम मुरिकल से अपनी जान बचा कर भागा और औरंगजेब के पापी विचार धर के घरे रह गए। इस स्वतन्त्रता युद्ध में मिथली दयालदाम ने जो अपूर्व दगाभक्ति दिग्लसाई वह इतिहास में सदा के लिए अमर रहेगी। महाराणा राजमिह के राज उन्होंने उत्तराधिकारी भी जना के राज्य के बडे मे बडे पदा पर नियुक्त करते रह। इनमें नायबी के वगज मेवाड के उने प्रसिद्ध गरदार हुए हैं। इस वग के पूवज सोलकी राजपूत ये जिन्होंने गारहवी शताब्दी में जैनधर्म ग्रहण कर लिया था।

मारवाड

लगभग ७०० वर्ष हुए मारवाड के राठौर राजकुमार माहद जी ने एक जन ऋषि के उपदेश से प्रभावित होकर जैनधर्म ग्रहण किया। उनके वंशज मेहता महाराजजी मम्रत् १५१४ में राव जाधाजी के साथ भण्डौर से जोधपुर आए और उनके प्रधान रह। मेहता वंश के उहुत से सरदार जाघपुर और किशनगढ़ के प्रधान बनते रहे जो कि अपनी चतुर राजनीति और राजभक्ति के कारण बड़े प्रसिद्ध हुए हैं, उनमें से मेहता रामचन्द्रजी किशनगढ़ के महाराजा मानमिह के प्रधान थे। इनको राज्य की सेवाओं के उपलक्ष्य में भारी जागीर मिली। किशनगढ़ का जन मंदिर भी इसी मेहता रामचन्द्रजी का बनाया हुआ है। जब मम्रत् १७५६ में नवाब अब्दुल्लाखान ने वादगाही सेना लेकर किशनगढ़ पर चढ़ाई की तो मेहता रामचन्द्र के वंशज मेहता कृष्णदास ने जो राज्य के प्रधान थे, नवाब से युद्ध करते उसे बुरी तरह पराजित किया और सत्ता को मार भगाया।

जोधपुर के भण्णिया का अजमेर के चौहान राजघराने का निवास है। इन्होंने भी जैनधर्म में प्रवेश कर लिया था। यह राव जोधाजी के साथ ही आकर जोधपुर में रहे थे। इन्होंने समय-समय पर मारवाड देश की भारी नेताओं की, इनमें से बहुत से सरदार अपनी राजनीतिभत्ता और सीरता के कारण प्रधान और सहायक के पदों पर नियुक्त रहे। इनमें अनेकप्रतिभ भण्णारी और रत्नमिह भण्डारी के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

मारवाड के इतिहास में सिंधवी इस्लाम भी बड़ा मान पाया है। यह चौहान वंश के एक शूरवीर जन योद्धा थे। महाराजा मानमिह और इनसे पहले महाराजाध्याय के समय में इन्होंने मारवाड के प्रधान पद को सुशोभित किया। इन्होंने कई युद्धों में

सेनापति बनकर बड़ी सफरनासे भाग लिया और मरते दम तक माग्वाड़ देश की अप्रूप सेराए की । यह पिण्डारा की लूट गसोट का काल था जिनमे स अमीरखाँ पिण्डारा मध्यभारत मे लूट गसोट करते करते जोर पकड़ गया और नवाब बन बठा था । इस न अपना कूटनीति से राजस्थान के राजाभा मे फट के बीज बुनी तरह रोकर उट आपस मे नहान का प्रपञ्च रचा । सिधवी इन्द्रराज इस नवाब की कूटनीति को अच्छी तरह समझता था और कई लडाइयाँ मे उसके दान खटटे किए थे । अन्त मे जब अमीरखाँ को यह निश्चय होगया कि सिधवी इन्द्रराज अपने जीत जी माग्वाड़ राज्य को कोई हानि न पहुचने दगा तो मम्वत् १८७३ मे उसने घोष से सिधवी जी को बुला भेजा । जौरपुर नरेश महाराजा मानगिह को इस दुषटना मे इनना असीम दुःख हुआ कि वह सत्तार छाडकर विरक्त होगए ।

बीकानेर

राजस्थान के इतिहास मे यह एक अद्भुत बात है कि बीकानेर राज्य की स्थापना मे भी एक जन नररत्न का पूरा-पूरा हाथ था । राय जावा जी के सुपुत्र बीकाजी ने मन् १४८८ मे अपने लिए एक पृथक् राज्य स्थापित करने का निश्चय किया । उस समय उनका मंत्री सरदार बछराज था । बछराज राजपूता ने १४ वीं शताब्दी मे जन ध्याप्य श्री जिनश्वर मूर्ति के पावन उपदेश से जनधर्म मे प्रवेश लिया था । राय बीकाजी ने अपने भक्त बछराज के प्रबन्ध से जब बीकानेर का स्थापना की ता बछराज को राज्य का प्रबन्ध पद दिया, जिसे बछराज ने बड़ी सफाता से निभाया और महाराज को सन्तुष्ट किया । राय बीकाजी के उत्तराधिकारी भी बछराज के वंशजा को बीकानेर राज्य का

सरदार अपनी चतुर राजनीति और युद्ध कुशलता से सुशोभित करते रहे। वच्छावत वंश का अन्तिम महापुरुष सरदार करमचन्द था, जिसे बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने अपना दीवान बनाया। करमचन्द मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे। जब दहावी महाराजा से अन्वय हो गई तो यह अकबर के दरबार में दहली पधार। अकबर ने करमचन्दजी का बड़ा आदर तथा सम्मान किया और उनके धर्म-प्रेम और विद्वत्ता में इतना प्रभावित हुआ कि उनकी नज़रो में जैनधर्म का स्थान बहुत ऊँचा हो गया। यहाँ तक कि जब सम्राट् को जन मुनि और विजय चूरि के आगमन की सूचना मिली तो सम्राट् ने अपने दरबारिया सहित बड़ी नम्रता पूर्वक स्वागत किया और मुनि महाराज का धर्मोपदेश सुना। करमचन्दजी का देहान्त भी देहली में ही हुआ।

राजस्थान के अनेक राज्यास भी इनकी जन सरदारा ने उसी तरह के महान् उपयोगी कार्य किए और देश के राजपूत शासकों के दिला पर अपनी अगाध देशभक्ति, चतुर राजनीति और अनुपम वीरता की धार बँटाई। यद्यपि राजस्थान के समस्त राजाओं की विभिन्न सत्ता मन् १६४८ में समाप्त होकर राजस्थान को एक विभाजित देश बना दिया गया है, फिर भी इन प्राचीन जन सरदारों के वंश राजस्थान में विद्यमान हैं और इनकी कीर्ति अमर है।

प्रश्नावली

~~निम्न~~ निम्न व्यक्तियों के विषय में मक्षिप्त नोट लिखिए—

महाराणा संग्रामसिंह, तोलाशाह, कमाशाह,

२—पद्मा न उदयसिंह के प्राणों की किस प्रकार रक्षा की और उसके पान्त पापण का क्या क्या प्रयत्न किया ?

- ३—~~मोगल~~ भामाशाह और राणा प्रताप के सम्बन्ध में जो कुछ भी आपको मालूम हो, सुनाइए ।
- ४—महाराणा राजमिह और दयालदाम के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? दयालदामजी की वीरता के कारनाम अपने शब्दों में सुनायें ।
- ५—राजकुमार मोहनजी मेहता गमचन्द्र और मिथवी इन्द्रराज के सम्बन्ध में जो कुछ आप जानते हैं सुनाइए ।
- ६—बीकानेर राज्य की स्थापना में किम जन वीर ने क्या महामता दी ? कमचन्द वीर ने और क्या प्रसिद्ध हुए ?
- ७—'राजस्थान और जन मरदार' इस रिषय पर एक निबन्ध लिखिए ।

गुरु महिमा

ॐ भजन ॐ

कत्रघा मित्र माहि श्री गुरु मुनिवर
 कर्गहि भवदधि पारा हो ॥ कत्रघा० ॥ टका॥
 (१)

भाग उदारा जोग जिन लीना
 छाटि पग्निय भारा हो ।
 इन्द्रिय दमन वमन मद कीरो,
 विषय कपाय निवार हो ॥ कत्रघा० ॥
 (२)

(कचन मान सरासर जिनके,
 निदक बदव सारा हो ।
 दुधर तप तपि मम्यव निज घर,
 मन यच तन कर धारा हो ॥ कत्रघा० ॥
 (३)

ग्रीष्म गिरि हिम गरिता नीर,
 पावसु तरु तर ठारा हो ।
 करुणा भीन चीन प्रस थावर,
 ईर्ष्या पथ सम्भारा हा ॥ कत्रघा० ॥
 (४)

मार मार जन धार गीन हड,
 मोह महा मल टारा हो ।

(२८)

भास छह माम उषाम वाम वन,
प्राप्ति करत आहार हा ॥वचन॥

(५)

भारत रोद्र लन नहि जिन
धम गुन चिन धारा हो ।
ध्यानाद गूढ निज आत्म,
गुद उपयोग विचार हा ॥वचन॥

(६)

भाष तरहि घोरन का तारहि,
भव जन मिष्ट धारा हा ।
"दोलन" ऐमे जन जतिन का
नित प्रति धार हमारा हा ॥वचन॥

प्रश्नावली

- १—इस कविता के रचयिता कौन हैं ?
- २—इस कविता में कवि ने किन गुणों को नमस्कार किया है ?
- ३—सच्चे गुरु के जो गुण कवि ने अपनी इस कविता में वर्णन किये हैं वे अपने शब्दों में सुनाइये ?
- ४—चौथे और पाँचवें छन्द का अर्थ समझाइये ?

अपरिग्रह

आज ममस्त ससार में हाहाकार मचा हुआ है। भाई भाई का रक्त चूमना चाहता है। पहले जैसा प्रेम भाव नहीं रह गया है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का जीवन तक नष्ट करने में कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं करना। मानव-समाज की मनोवृत्ति आज दूषित होगई है इसका कारण है प्रत्येक मनुष्य तृष्णा रूपी रोग से पीड़ित है। तृष्णा रूपी गढ़े में वह इतना डूब गया है, उसका ऊपर आना ही कठिन हो गया है। प्रत्येक मनुष्य सम्पूर्ण विश्व का धन मग्न हो करना चाहता है और दूसरे को उसमें से कुछ भी देना नहीं चाहता। इसी दूषित मनोवृत्ति के कारण बहुत से पापा का सूत्रपात हुआ। एक भाई मृत पिता की पूरी सम्पत्ति लेने के लिए दूसरे भाई की हत्या तक करने में संकोच नहीं करता। पति पत्नी का धीरे पत्नी पति का अन्त तक कर देने में कोई विचार नहीं करते। इस घोर अत्याचार का कारण हमारी आवश्यकताओं का असीमित होना है। असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपरिमित धन धान्य की आवश्यकता पड़ती है। समस्त विश्व का धन भी यदि एक व्यक्ति के पास आजाता है, तब भी वह संतुष्ट नहीं हो पाता।

आदर्श समाज वह है जिसके सदस्यों में उपलब्ध सम्पत्ति समान रूप से वितरित हो, न किसी के पास अधिक हो न कम। प्रत्येक की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति हानी रह परन्तु यह बात तभी सम्भव है, जब कोई भी व्यक्ति अपनी साधारण

५११ की पूर्ति से अधिक परिग्रह न रखे। समाज में

मुखद वातावरण उत्पन्न करने का राजभाग केवल अपरिग्रह है। अपरिग्रह का नाम ग्रन्था में महापुरुषा के उपदेशों में ही मिलता है, जीवन में इसे व्यावहारिक रूप देने वाले विरले ही दिखलाई पड़ते हैं। आज बड़े बड़े धर्मोपदेय नेनागण विद्वान् अपरिग्रह का समार को उपदेश देते हैं पर स्वयं जीवन में आचरण नहीं कर पाते यही कारण है ससार में चहुं ओर दुःख ही दुःख दिखलाई देता है। मानव द्वारा स्वयं आविष्कृत विषमता जन्मित परिग्रह ही संकट मूलक है और अपरिग्रह ही हमारा सम्पूर्ण संकटों की एकमात्र रामबाण औषधि है।

जिनसे अपरिग्रह परिणामी में सन्तोष आजावे उतना धन धान्य दासी दास सवारी, गृह अन्न आदि परिग्रह का परिमाण करके उमस अधिक में बाँछा का न करना परिग्रह परिमाण अणुवन्त है।

परिग्रह का अर्थ है ग्रहण करना, अपरिग्रह का अर्थ है ग्रहण न करना। 'भगवान् ने मूर्खों को परिग्रहे कहा है। दूसरे गुरुओं में यह भी कह सकते हैं कि समस्त इन्द्रिय गम्य पदार्थों में भ्रामक अपरिग्रह है। अपरिग्रह इन्द्रिय सुख के लिये भाव्यरुता से अधिक पदार्थों का संग्रह करना सामाजिक कलह और संघर्ष का कारण है। अनियंत्रित सचय और पूँजीवाद परिग्रह के परिणाम हैं। अर्थ संग्रह और अल्प व्यय से ही समाज में आर्थिक समता और सुख शान्ति स्थापित हो सकते हैं। परिग्रह समस्त पापों का भूत कारण है। व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण के लिये इस महापाप से बचना आवश्यक है और इसका उपाय है परिग्रह की प्रवृत्ति का त्याग।

'सामाजिक सुखों का स्वेच्छा से त्याग, वामनाश ने विरक्ति आडम्बरों से निर्लिप्त तथा वस्तुओं के संग्रह का मोह त्याग यही अपरिग्रह के अर्थ हैं। अपरिग्रह का मन्तव्य समझाते हुए

नीतिवारो ने कहा कि मनुष्य का अपना भौतिक सम्पत्ति से मोह नहीं रहता चाहिये तथा प्रलोभना से गदा वचना चाहिये । यह अपने जीवन की आवश्यकता पूर्ति के लिये सम्पत्ति तथा वस्तुय रख सकता है, परन्तु उसे अथ प्राप्त में अपने को भुला नहीं देना चाहिये । उसे राग द्वय क्रोध, मान, माया, लाभ, शोक भय जुगुप्सा आदि का त्याग करना चाहिये ।”

ऊपर बताया है कि मूर्छा परिग्रह है, बहिरग में रखमाण तथा रहने का फल की ओपडी मात्र भी न हाने हुए, यदि अन्तरग में जरा भी ममत्व भाव अथात् याच्ना रनी हुई है तभी परिग्रह ही कहनाता है ।

परिग्रह के दो भेद हैं—एक अन्तरग परिग्रह और एक बहिरग परिग्रह—

अन्तरग परिग्रह चौदह प्रकार का होता है—

(१) मिथ्यात्व (२) वेद (३) गग (४) द्वय (५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लाभ (९) हान्य (१०) गति (११) अरति (१२) ताप (१३) भय (१४) जुगुप्सा ।

बहिरग परिग्रह दस प्रकार का होता है—क्षत्र, वास्तु, हिरण्य, मुक्ता धन, धान्य, दासी दाग, कुप्य और भांड । इस तरह अन्तरग और बहिरग परिग्रह मिलाकर कुल २४ प्रकार का परिग्रह होता है । जिनके अन्तरग के परिग्रह मिथ्यात्व कपायादि का अभाव हो जाता है, उनमें बाह्य परिग्रह में ममता नहीं होती ।

जगत् में ममस्त अनीति तथा विषमता का कारण परिग्रह है । परिग्रह से मनुष्य, समाज तथा राष्ट्र का पतन हो जाता है । परिग्रह की बाधा से ही प्रेरित होकर मनुष्य हिंसा करना है, झूठ बोलना है, मायाचारी करना है, चारी करता है, कुशील सेवा । है परिग्रह के कारण ही आप अपने प्राणा का त्याग कर

देता है, दूसर को घार हत्या करते हुए जरा भी शका नहीं करता । परिग्रह के वश तीव्र क्रोध करता है, परिग्रह के प्रभाव से ही महा अभिमान करता है, परिग्रह के लिये ही मायाचार प्रपञ्च रचता है । परिग्रह की ममता से ही महालोभी होता है बहुत आरम्भ करता है जमाने भर का आरम्भ रचना है । वास्तव में देखा जाय तो जगत में कषाय का मूल तथा अनघ की जड़ परिग्रह है, जो ममस्त पापों से छूटना चाहते हैं उन्हें परिग्रह से विरक्त होना ही योग्य है ।

मुनिराज, त्यागी तपस्वी साधु ता ब्राह्म परिग्रह के सबधा त्यागी होते हैं, अन्तरंग के परिग्रह का भी दिना दिन अधिकाधिक अपने आत्म कल्याण के अर्थ क्षीण करते हुये भाग बढ़ते चले जाते हैं । व तो चौरीम प्रकार का समस्त परिग्रह विकार एवं विचार उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का परित्याग करके शुद्ध निमित्त अपरिग्रही स्वाध्यायी योगी, आत्म-प्राप्ति जनक हैं ।

यद्यपि परम आत्म कल्याण की दृष्टि से नमस्त परिग्रह त्याग्य है परन्तु जो गृहस्थ में रहकर धर्म सेवन करना चाहते हैं, उन्हें कुछ न कुछ थोड़ा बहुत परिग्रह अपने जीवन में निर्वाह अर्थ रचना ही पड़ता है । जो गृहस्थ व परिग्रह न लावे तो बाल दुकान में, रोग में आपत्ति में विवाह में, परिणाम बिगड़ जाते हैं इसलिये गन्धर्व धर्म की रक्षा के निम्न एक गृहस्थ व लिये अनिवार्य हो जाता है कि वह परिग्रह सचय करे । आजीविका का भाषन पाय आर नोति पूवन कर । कहा है, कि साधु यदि नित्यनुपमात्र भी परिग्रह रखता है तो नाना पापों से भ्रष्ट हो जाता है और गृहस्थ यदि उचित आवश्यकतानुसार परिग्रह सचय नहीं करता तो वह भी धर्म तथा नीति के भाग संच्युत हो जाता है । इसलिये गृहस्थ में थोड़ा बहुत परिग्रह सम्यक् विद्य

विना परिणामो म स्थिरता नहीं रहती यदि आजीविका नहीं होनी है तो हमारे विना स्वाध्याय म पूजन मे धर्म ध्यान मे परिणाम नही दिखने । सत्ताप नहीं रहता धर्म छूट जाता है । आकुसला उपपन्न होकर मरणा परिणाम बनन ही बल जात है । किसी समय भी परिणामो म स्थिरता नहीं माने पानी । आजीविका म विना शरीर की स्थिति नहीं, रक्षा नहीं, शरीर विना शून्य शीत समय तब धर्म गांधी कम किया जा सकता है ? दूसरीदिय एक म ग्य न विरु आकायक है कि दया काल को विचार कर अपना गुणाय शक्ति तथा श्रम गहाय साधना को ध्यान म रग दाय भाग म आजीविका करक धर्म साधन कर । पाणवृत्ति का त्याग करक धर्म चार्मि का पानन करते, पुत्र अपने का भागा का विश्वासपात्र पाय । भक्ति गति पुषि, यागिग्य और निरप-कता गानुय प्राप्त कर आजीविका उपपन्न करने की योग्यता प्राप्त करे और फिर लाभानग्य कम के क्षयोपगम अनुसार गो कु, भी जेनाविक लाभ हो उसमे सन्तोष कर और प्रमय विर रह । उमी क अनुमार अपना और अपने बुद्धि का यथासाध्य पालन पोषण कर । अगवान् न हो और अपनी स्थिति क समान ही गत करे । दूसरे की रक्षा देखी अविश्व रख न कर । शक्ति से अतिर गत ररोग ता दोना लोको से भष्ट होकर दग्ध्री बन जाता पड़ेगा । यश धर्म और नीति तीना गष्ट हो जायग । मलीरता आजायगी, शुभ ध्या म बुद्धि नहीं लगगी इसलिम सतागपूवक अपनी आमदनी से कम खच करना ही गृहस्थ की श्रेष्ठ नीति है ।

आजीविका की स्थिरता क विना धर्म साधन भी नहीं हा सकता । जिसकी आजीविका स्थिर होती है उसका धर्म साधन मे योग्यता होती है । कहा भी है ' मस भजा न हाय गोपाला' जिसके हादयो को परिपूर्णता, नीरोगता होती है, दाय अयाय

का विवेक होता है धम अधम तथा योग्य अयोग्य का विचार होता है। जा विनयवान् होता है जो पराये धन और पर वनिता की ओर झूठे से भी दृष्टि उठाकर देखता तक नहीं, जिसके आलस्य और प्रमाद नहीं, जो धीर वीर है, देश काल के अनुसार वचन कहने की योग्यता जिसमें है उसको आजीविका और धम माना का लाभ अवश्य होना है। गुणवान् नितोभी, आलस्य रहित, उद्यमी तथा विनयवान् के लिये आजीविका दुर्लभ नहीं होती है। पहले आप आजीविका के योग्य पात्र बनिये फिर आजीविका नियमपूर्वक साभानराय बम के दायोपशम प्रमाण अवश्य मिलकर रहेगी उसमें मन्तोष धारण कर आनन्द पूर्वक रहिये। आजीविका प्राप्त होजाने पर आमाय और अनीतिरूप प्रवृत्ति ग्रहण कर उसे नष्ट नहीं करना चाहिये, यदि तीव्र असाया वेदनीय बम के उदय से नष्ट हो जानी है तो उममें दुखी मत होओ सकलेशित हो धम का पालन तो मत छोड़ो। अपने से अधिक दीन हीन जीवा की दया विचार कर अपने परिणामों में समता धारण करो। धम के साथ अपने कर्तव्य का पालन करते रहो। ऐसा यत्न करो कि धम न छूटने पाये। जैसा भी भोजन रस नीरस मिले, खाकर अपने को धम समझो।

यदि ऐसे दृढ़ परिणाम होव और जितना मिला है उसी में मन्ताप कर बाँछा रहित होग तो वर्तमान समय में दुख ही नहीं हागा और समस्त पाप बम की ऐसी निजरा हा जावेगी कि धार में धार तपश्चरण करने पर भी कठिनता स हो सके। इस प्रकार परिग्रह परिमाण व्रत का धारक गृहस्थ अपनी इच्छाया को सीमित करते हुये आनन्द पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है उसके हृदय में गार्गि का निवास हाता है और वह सत्यम की ओर वेग से बढ़ता है, यदि निर्धारित सीमा से अधिक धन या सम्पत्ति सयोग से प्राप्त हो जावे या निर्धारित सीमा से अधिक

सन्तार में सुग और शान्ति स्थापित करने के लिये तथा विपमता को मिटाने के लिये अहिंसा परिगृह ही अमोघ उपाय है परिगृह परिमाण अहिंसा का ही एक पर्याय है । स्व० डाक्टर बनीप्रसाद साहव M A Ph D इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखते हैं — यदि इस अग्रगण्य का पालन किया जाय तो हमारे धन तथा साम्राज्य के लिये उस क्रूर तथा प्रचण्ड प्रतिद्वन्द्वता का अन्त हो जायगा जो आधुनिक युग का शाप है तथा सभी दुःखों की जननी है । आज अपरिगृह की जितनी आवश्यकता है उतनी पहले नहीं थी । यह ग्रन्थ सबभन्नी भौतिकवाद का परिहार करने वाला है । एक दृष्टिकोण से जिसे हम या कह सकते हैं कि यह अग्रगण्य सम्यक् विवेक तथा धर्तुओं के समुचित मन्थन की शिक्षा देना है जनधर्म की प्रमृग धन है

प्रश्नावली

- १—अपरिगृह में आप क्या समझा है ?
- २—परिगृह की हानियाँ वगन कीजिये ?
- ३—क्या एक गृहस्थ पूणतया अपरिगृही हो सकता है ? यदि नहीं तो उसका क्या कर्तव्य है ?
- ४—अपरिगृहवाद मसार में फली विपमता को दूर करने में कैसे और कहाँ तक महामुक्त हो सकता है ?
- ५—अपरिगृही किन किन बातों से बचता है और एक सद्गुरुव्य रहते हुए वह अपना तथा अपने कुटुम्ब का पालन पौषण कैसे करता है ?
- ६—“पसे वाना माधु कीटी के चाम का नहीं और बिना पस वाला गृहस्थ किसी काम का नहीं ।” इस विषय पर एक निबन्ध लिखिये ?
- ७—“श्रुते भजन न होहि गोपाना” इस वाक्य की सत्यता असत्यता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट कीजिये ?

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य पर तप

ब्रह्मचर्य मानव जीवन का प्रधान अंग है। गौरीरिक् शक्ति और मानसिक विकास का अवलम्ब तथा स्वास्थ्य की चाबी है।

गौरीर रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य धारण करने की यही आवश्यकता है। छात्रावस्था में बिना ब्रह्मचर्य वन पालन किए किसी प्रकार स्वास्थ्य रक्षा नहीं हो सकती। वीर्य शरीर का राजा है वीर्य की रक्षा होने से ही शरीर की रक्षा हो सकती है। वीर्य का रक्षा होने से मस्तिष्क की शक्तियाँ बलवती होती हैं। ब्रह्मचर्य का प्रभाव से ही मनुष्य शरीर में अपूर्व तन और खी गौरीर में सतीव का निमल ज्योति लियेवाई देती है। ब्रह्मचर्य में रोग नाशक और उत्तम स्वास्थ्य प्रदायक महीषाग्नि है। निर्धर्मत ब्रह्मचर्य पालन करने में बल बुद्धि बल और कान्ति की वृद्धि होती है। गौरीर के सम्पूर्ण अंग प्रत्यक्ष और मज्जि-स्थान दृढ़ होते हैं। मन में अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है, मानसिक और गौरीरिक् शक्ति की विशेष रूप में वृद्धि होती है।

ब्रह्मचर्य को भंग करने से महाभयंकर धातु दोषत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। धातुदोषत्यादि के उत्पन्न होने पर जीवना शक्ति एकदम क्षीण हो जाती है। वीर्य के नाश हमारे मस्तिष्क और पाकस्थली का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धातु दोषयुक्त होने से मस्तिष्क में एक प्रकार का गौरीर योग का उपस्थित होता है और पाकस्थली अत्यन्त दुबल होकर अजीर्ण आदि अनेक व्याधियाँ

स्वदार मतोपी व्रत का पालन करने वाला अपने पुत्र, पुत्रियों को छात्र भ्रम के विवाह आदि के भगडा में नहीं पड़ता व्रतग श्रीडा नहीं करता । अपन मन वचन काय की प्रवृत्ति नीच नहीं करता । भाण्ड रूप चेष्टाये नहीं करना, जैसे पुष्प होकर स्त्री का रूप बनाना, स्वाग रचना, स्त्रिया जैसी चेष्टाय करना । काम सेवन की तीव्र अभिलाषा नहीं रखना । व्यभिचारिणी स्त्रियों के घर आना जाना उनका अपने घर बुलाना, उनसे लेन स्न करना परस्पर गतालाप करना उनके रूप शृङ्गार आदि का देखना इत्यादि व्यवहार बदापि नहीं करता । ब्रह्मचर्य व्रत का धारक गृहस्थ भ्रम स्त्रियों की राग उत्पन्न करने वाली, राग बढ़ाने वाली तथा परिणामा का विवृत करने वाली बयाय न पढ़ना है, न सुनता है । भ्रम की स्त्रियों के मनाहूर भगा का राग परिणामा तथा विवृत भावों के साथ देखने का त्याग करता है । ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने से पहले व्रति दशा में भोग हुए भोगों को याद नहीं करना । इष्ट कामादीपन करने वाले भोजन तथा स्नान पान का त्याग करता है । अपन दारीर में अजन, मजन, इस तेल फुनेल आदि काम विचार को जागृत करने वाले पदार्थों को लगाने का त्याग करता है । कामोत्तेजक वस्त्राभरणादिक का त्याग करता है । परिणामा को निवृत्त कर देने वाली सजावट बनावट नहीं करता ।

ब्रह्मचर्य के पालन किये बिना जप तप सयम सब निष्फल है । कुशीत पुरुष का विवर जाता रहता है, उसकी चेष्टाय मत्तोमत हम्नी सरीणी हुआ करती है, उसके चित्त से भक्ष्या-भक्ष्य, याग्यायाम्य का निचार जाता रहता है । प्रत्यक्ष भाषदा और अपयश होना देखता है तो भी काम की अंधरी उमरी आत्मा में ऐसी छा जाती है कि उसे कुछ नहीं सूझता । पशु और कामाध में कोई अंतर नहीं रहता, उसकी लोभ-राज समूल

नष्ट हो गयी है मरकर दुर्गति में नाना प्रकार के समूहों में भागना हुआ ससार में परिभ्रमण किया करता है। गीसवान् पुण्य प्रसम्पन्न बाल पयन्त स्वर्गों व मुख्य भोग मनुष्यों में प्रधान मनुष्य ही परम्परा से मानव अवस्थावाच मुख्य का प्राप्त होना है।

वास्तव में ब्रह्मचर्य का माहात्म्य बड़ा है। इसके पालन में मनुष्य सदा बीरोग और सुखी रहता है इसी में धन, जग और मृत्यु से रक्षा होती है इसी से दृष्ट पुष्ट बनवान गतान उत्पन्न होती है इसी में मनुष्य धृति मन्त्र, सत्यवादी जितेन्द्रिय और धर्मनिष्ठ होता है। इसी में भज और ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है इसी में धर्म साधन में शक्ति और सिद्धि प्राप्त होती है इसी में मनुष्य निमग्न और निमग्न होकर जगत् की सेवा में निमग्न हो जाता है और इसी के उल में परम्परा से परमात्म पद को प्राप्त होता है।

विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्याभ्यास करते समय पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ रहें। कृतसगति, स्वाद उपवास गरिष्ठ भोजन दुर्धरिष्ठ व्यक्तियों का संपर्क और गंदे चिगपट, मिनमा, धियेटर आदि से मदक बचने रहें। विवाह प्रीति प्रयत्न में कराय, जब तक विवाह न हो ब्रह्मचर्य से रहें विवाह हो के पश्चात् स्वेच्छा सताप धन का पालन करें। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिय अपना जीवन सादा यात्रा और अपने विचार टुट्ट रहें। ब्रह्मचर्य मनुष्य की शक्ति की विवर्धन होने में महायुक्त होता है। आत्म मयम का गजमाग है यह आदशों का समुज्ज्वल उभाने वाला है व्यक्ति व सवतोमुखी निर्माणम महायुक्त प्रदान करता है इसमें विना मनुष्य ज्ञान-साधना तथा अपने उद्देश्या का उस उच्च भूमि पर नहीं पहुँच पाता जिस पर वह पहुँच सकने की क्षमता रखता है। ब्रह्मचर्य आन्तरिक विज्ञान की एक सीढ़ी है। ब्रह्मचर्य जीवन

का नैतिक मान ऊँचा करता है। मन की वृत्तिषो पर अवुश रखता है। आधुनिक समय में आम समय की बड़ी आवश्यकता है। श्री कुलमद्राचाय लिखते हैं—

चित्त सद्रूपन वामस्तथा सद्गतिनाम्न ।
सद्रूपन ध्वसनश्चामी कामोऽन्य परम्परा ॥
दोषाणामाकर कामो गुराणान्ध विनाशकृत् ।
पापम्यच निजा बन्ध परापदाच्च सगम ॥
तन्मा कुम्भ मद्वत्त जिनमागरा सदा ।
य मन्त्रिण्डिता यानि स्मरशाय सुदुधरम् ॥

अर्थात्—वाम भाव मनसा दूषित करने वाला है, सद्गति का नाशक है सम्यक चारित्र्य को नष्ट करने वाला है। यह काम परम्परा मनथकारी है। वाम दोषों का भण्डार है। गुणों का नाश करने वाला है। पाप का मुख्य बन्धु है। बड़ी-बड़ी आपत्तिषो को बुलाने वाला है। इसलिये सदा जनधर्म में लीन होकर सम्यक चारित्र्य का पालन करो जिससे अति दुष्ट काम की शक्त चूर्ण चूर्ण हो जावे, ऐसा ज्ञान काम भाव का त्याग कर धर्म का पालन करो। यही है—

धममाचर यत्नन माभवस्त्व मृतापम ।
सद्धम चतमा पु सा जीविन सकन भवत् ॥
मृतानव मतास्ते तु ये नरा धमकारिण ।
जीवतोऽपि मतास्त्व यनरा पापकारिण ॥

अर्थात्—हे प्राणी ! धर्म का आचरण कर मृतक के समान मत बन। जिन मानवों के चिन्तन सच्चा धर्म है उन ही का जीवन सशक्त है जो धर्माचरण करने वाले हैं वे मरने पर भी अमर हैं, परन्तु जो मानव पाप के मार्ग में जाने वाले हैं, वे जीत हुए भी मृतक के समान हैं। ग्रन्थचय का पालन परम धर्म है

इसने पालन में कल्याण ही कल्याण है । पूज्य श्री हेमचन्द्रजी प्राचाय का याव्य इस सम्बन्ध में प्रत्येक छात्र को हृदयाद्भुत कर लेना चाहिये—

प्राण भूत चरित्रस्य परब्रह्म न कारणम् ।
समाचरन् ब्रह्मचर्यं पूजितैरपि पूज्यते ॥

प्रश्नावली

- १—मुनि और थावन के ब्रह्मचर्य व्रत में क्या अंतर होता है ?
- २—एक गृहस्थ को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कैसे करना चाहिये ?
- ३—ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये ?
- ४—ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिये किन किन बातों की आवश्यकता है ?
- ५—“विद्यार्थी और ब्रह्मचर्य” इस विषय पर एक निबन्ध लिखिये ?
- ६—ब्रह्मचर्य से शरीर स्वास्थ्य की क्या क्या हानियाँ होती हैं ?



श्री नेमिचन्द्राचार्य श्री वीरशिरोमणि चामुण्डराय

भारत वसुधरा पर भौय सम्राट चन्द्रगुप्त, बिम्बसार
अशोक का गोत्र सम्प्रति, ह्यवधन का जान सं रोक्ने वाला
चालुक्य पुलकेशिन दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन अन्तिम
हिंदू सम्राट श्री हेमचन्द्र (हेम्तू) आदि अनेको जन राजा हो चुके हैं
और उदयपुर के दीवान भामाशाह जयपुर के दीवान अमरचंद
तथा वीर चामुण्डराय आदि भी अपन सद्कार्यों से अपन गौरव
पूरा नाम को अमर कर गये हैं ।

दक्षिणी भारत में तो चोल पाण्ड्य, केरल, चालुक्य, राष्ट्रकूट
आदि अनेकों बंशों में अनेक राजमन्त्री व नरेश हो चुके हैं
जिन्हें इतिहास व लेखक क्यों दृष्टि धोक्ल कर जाते हैं महान्
प्राज्ञ है ।

भूमर राज्य गंगवाडी देश नाम से प्राचीन काल में अति
विख्यात था । दूसरी दानाब्दी में यहाँ गंग वंशीय जैन क्षत्रिया
का राज्य था इसी वंश में दशवीं शताब्दी में मारसिंह द्वितीय
राज्य करते थे । चामुण्डराय इन्हीं के सेनापति व राज्यमन्त्री थे ।

इसके राज्य काल में गंगसना ने चोल पाण्ड्य और नोल्लादि
देशों के पल्लव राजाओं से रणांगण में लोटा लिया था और
विजय पाई थी । अन्त में मारसिंह नृपति ६१/ ई० में आचार्य
अजितसेन के निकट वकापुर में समाधिस्तीन हुये । इसके उपरान्त
राममल्ल द्वितीय ने सिंहासन को सुशोभित किया, पश्चात् राक्षस
नृपति हुए । चामुण्डराय ने तीनों राजाओं की कीर्ति मन्त्रिमा को
अपनी सेवा में सुरक्षित रखा था ।

दीर्घायु मात्मशाली चामुण्डराय ग्रहक्षत्र वश के रत्न थे । उनके माता पिता तथा जन्मस्थान और तिथि का कुछ पता नहीं चलता । इसी प्रकार श्री नमिचन्द्राचार्य का प्रारम्भिक जीवन का भी पता नहीं चलता । हाँ, यह स्पष्ट है कि चामुण्डराय का अधिक समय गंगा की राजधानी तलवाड़ में व्यतीत हुआ ।

चामुण्डराय की माता मानवदेवी थीं यह जाधम का हठ प्रकट थी, अतः चामुण्डराय भी उन्हीं के प्रतिरूप दृश्ये । चामुण्डराय ने अनिनसन स्वामी से श्रावक श्रत लिया थे और आचार्य आनसन के पास इन्होंने सब शस्त्र शास्त्र विद्या सीखी थी । किंतु चामुण्डराय के जीवन साँच को ठीक ठीक ढानने वाले श्री नमिचन्द्र ही थे । चामुण्डराय को अध्यात्मज्ञान आपसे ही प्राप्त हुआ था । इनका विवाह अजितानेरी नाम की रमणी रत्न से हुआ था । गृहस्थाश्रम प्रवृत्ति कर चामुण्डराय धर्मार्थ नामरिक बन गये और गंग राजाभा के प्रधान सेनानी तथा प्रधानमंत्री बनाये गये । अर्थात् मसूर राज्य के भाग्य निधाता चामुण्डराय बने । इनके गुणों के सबब विद्वानोंने ग्रहक्षत्र कुल भोजु ग्रहक्षत्र कुलमणि आदि नामों से अलङ्कन किया था । आसन सभा हाथ में होने पर भी आपने धर्म के नीति उल्लंघन नहीं की । उनके निये पर द्रव्य पत्थर और पर स्त्री मान तुल्य भी अतः व शीघ्रभरण व । अपना मृत्यु निष्ठा के कारण व मृत्यु मुग्धिष्ठिर कहलाये । उन्हें चामुण्डराय गोम्मटदेव भा कहते थे । वीराचित्त नामों से चामुण्डराय कहाते थे । पूव जन्म के सम्बन्ध में मत्तयुग यण्मुखाख कह जाते थे । वेता मवीरमातण्ड थे ।

चामुण्डराय के सम्बन्ध में कुछ मिल भी जाये पर श्री नमिचन्द्रजी का कुछ भी नहीं मिलता । कौन माता पिता, दादागुरु थे ? पर इनका साधु जीवन का कुछ हाल मिलता है, जिससे

महान् पुरुष सिद्ध होते हैं। यह मूल सघ देशीय गण के आचार्य थे। गोम्मटसार मे उन्होंने गुरुत् अमयनन्दि, द्धनन्दि, वीर-
नन्दि, वनवनन्दि को स्मरण किया है पर असली गुरु यौन भ
पता नहीं लगता। चामुण्डराय के यहाँ आचार्यजी की मूर्ति
मान्यता थी। एक दिन आचार्यजी ने चाँदपुर के गोम्मटेश्वर
की विशाल मूर्ति का घणन किया। कातकदेवी उनका हाल
पहिले सुन चुकी थी। उनने इस पावन तीर्थ के दशन का दृढ
निश्चय किया। श्री आचार्यजी भी इनके साथ थे, जब अवराण
वेलगोल के पास गाये तो जनता से अवगत हुआ कि वहाँ
कुक्कुट सर्पों का म्था है, मार्ग दुर्गम है। धर्मात्मा बालादेवी
प्रति दुखी हुई। तब श्री चामुण्डराय तो नेमीचन्द्रजी ने कहा,
मुझ पद्मावती न निद्रा के ममय कहा है, जहाँ ठहरे हो वहाँ मे
पास ही राम रावण से पजित एक गोम्मटेश्वर की मूर्ति है। लाग
उस भूने दृये हैं। उसका उद्धार कराकर सुयश कमादये। इसने
सबको सतोष हुआ और पोज करने पर मूर्ति प्रतिष्ठित हुई।
श्री मजितसेनाचार्य प्रतिष्ठा करने वाले थे। चत्र शुक्ला ५ इतवार
ता० १३ माघ ६८१ को यह सुखद घटना हुई, इसी रोज अवराण
वेलगोल के पर्वत के ऊपर ५८ फुट ऊँची विशालकाय मूर्ति का
उद्घाटन हुआ जो चामुण्डराय के यग को घरानि कर रही है
और समार की अद्भुत वस्तुओं म से एक है।

श्री गोम्मटेश्वर की मूर्ति स्थापना के कारण चामुण्डराय
"राय" नाम से प्रसिद्ध हुये। उहाँ श्री नेमीचन्द्र की पाद पूजा
कर मूर्ति रक्षा के लिये कई ग्राम दिये, जो अद्यावधि लगे हुये
हैं। चामुण्डराय की यह मूर्ति स्थापना उद् महान की है। जिन
पूजा का अधिकार जीनमात्र को है। उनकी यह मूर्ति स्थापना
जनधर्म के इस विज्ञान रूप को प्रकट कर रही है। आज

गोम्मटदेव के ज्ञान के निये जन मानेन, देनी विदेनी सब ही माने हैं और अपने आप को कृतकृत्य समझते हैं। वास्तव में श्रवणबेलगाल की यह गिल्फना दानीय बन्तु है और आचार्य महाराज की अद्भुत मूर्ध सूचक है। आचार्यजी ने चामुण्डराय के कावों का वर्णन इस भाँति किया है। गोम्मटदेव के ऊपर चामुण्डराय के आचार्य मन्दिर एवं हाथ प्रमाण इन्द्रमणि का श्री नेमीनाथ का प्रतिप्रिय तथा मार म प्रसिद्ध दण्डिण कुक्कुट जयवर्ग प्रवर्तों। इस प्रतिमा का मूर्त सवायतिदि के देवा ने तथा सवायधि के देवा न दया है।

इस प्रकार श्रवण बेलगाल की चामुण्डराय ने त्रिपुल घन ध्यय रूप बनवाया इससे चामुण्डराय जनप्रिय और धर्मप्रभावक बने। श्री नेमिष आचार्य का एक वाय और भी अत्यन्त महान् पूण है।

एक बार श्री आचार्य मिहान्त ग्रन्था का पाठ कर रहे थे, चामुण्डराय के आने पर उन्हें बन्तु कर दिया। चामुण्डराय के पूछने पर आचार्य ने कहा कि मुग्धा का इनमें सत्त्व प्रवर्ण नहीं है। तब चामुण्डराय ने कहा मुझ ज्ञान का कन होगा ? तब आचार्य ने गोम्मटदेव के कांड जीव कांड तस्मिन्सार, शप्पणामार आदि मंदोप सग्रह मूर्त बनाये जो आज भी दुर्लभ हैं। इनके मित्राय द्रव्यसग्रह तथा प्रतिष्ठा पाठ भी बनाय।

गुरु के अनुरूप चामुण्डराय ने भी ममृत्त, प्रावृत्त, वनडी भाषा में रचनाएँ की थी। जिसे चान्द्रिमार, त्रिपट्टि लक्षण पुराण उपलब्ध हैं। पहला आचार ग्रन्थ है, दूसरा वनडी भाषा में पुराण है, जो बगलौर में रखा है। चामुण्डराय ने वनडी भाषा में गोम्मटदेव की टीका भी रची थी। गुरु और शिष्य ने धर्म प्रभावनाय कुछ उठा नहीं रखा। यह हुआ चामुण्डराय का धार्मिक पहलु परमार्थ साधते हुए चामुण्डराय ने शोक-

का विशाल सरोवर आज भी दृशनीय है । इस समय गगन ससार का चौथा उत्कृष्टतम राज्य था ।

पट्टमी राज्या मे चामुण्डराय का व्यवहार सदा सुंदर रहता था । उन्होंने राष्ट्रकूटों के विषे कई युद्ध करके इसे गगन देश का चिरञ्छुरी बना दिया ।

चामुण्डराय के समय गगन राज्य की बेजस शासन शिल्प और व्यापार की ही उन्नति नहीं हुई वरन् साहित्य की भी महान् उन्नति हुई । चामुण्डराय युद्ध क्षेत्र के बचे हुए समय में भी साहित्य रचना में मग्न थे और कविता का प्रोत्साहन देते थे । इनमें कनडी भाषा के आदिपद्म धनरत्न और नागवर्म प्रसिद्ध हैं ।

संस्कृत प्राकृत में भजिनमेन नेमिचन्द्र माधवचन्द्रजी उद्भूट प्राचाय उन्नेस योग हैं ।

चामुण्डराय जमे देश-गंगा और राज प्रबन्ध में पटु थे वैसे ही श्री नेमिचन्द्राचाय धर्मोन्नति और शासन रक्षा में निपुण थे । जन दशन का ममता उनका कोई नहीं था । उह इसलिये सिद्धान्त चक्रवर्ती पद से चलकृत किया गया था । भारतीय इतिहास में उनकी गुण गरिमामें गाई है—

सिद्धान्ताम्भोधिचन्द्र पुणतपरमदशी गणाम्भोधिचन्द्र ।

स्याद्वादाभ्याधिचन्द्र प्रकटित नय निरय धाराधिचन्द्र ॥

एतत्त्रयोचन्द्र पदनुत कमलप्राप्त चन्द्र प्रगस्तो ।

जीयात् नानाधिचन्द्रो मुनिवकुल विपञ्चद्रमा नमिचन्द्र ॥

आवका में चामुण्डराय वीराम अग्रणी आवक है और मुनिया में श्री नमिचन्द्र प्रमुख पक्षि में स्थान पाने योग्य हैं । उनके काय उन्हें सम्यक्त्व गन्तावर प्रकट करते हैं वे महान् धर्मात्मा, कवि और सत्य पालक थे ।

प्रश्नावली

- १—श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चमकतीं कीं थे, उनके क्या काय हैं ?
- २—चामुण्डराय का किंग राज यश से सम्बन्ध रहा है ?
- ३—चामुण्डराय की क्या पदवियाँ थीं और उन्हें कब प्राप्त हुईं ?
- ४—गोम्मटदेव से क्या सम्बन्ध है और उनकी मूर्ति कहां प्रतिष्ठित हुई ?
- ५—गोम्मटदेव की मूर्ति आश्चर्य-कारक क्या है ?
- ६—श्री नेमिचन्द्र ने कौन से शास्त्रों का बनाया है ?
- ७—श्री चामुण्डराय ने कौन से शास्त्रों को बनाया है ?
- ८—श्री चामुण्डराय ने कौन से साधोपसाधों काय किया हैं ?
- ९—श्री चामुण्डराय की योग्य ब्रह्मण्ड में किन किन गुरुओं का हाथ है ?
- १०—गोम्मटदेव कौन थे और उनके जीवन का क्या इतिहास है ?

महावीर-सन्देश

(श्री पंडित जगलकिशोरजी भुक्षार)

यही है महावीर सन्देश ।

विपुलाचल पर दिया गया जो ।

प्रमुख घम उपदेश ॥यही०॥

(१)

सब जीवों को तुम अपनाओ,

हर उनके दुख क्लेश ।

असद्भाव रखो न किसी से,

हो भरि क्यो न विरोध ॥यही०॥

(२)

बरी का उद्धार अष्ट है,

कीज सविधि विनाश ।

बर छुटे उपज मनि जिससे,

वही यत्न यत्नेन ॥यही०॥

(३)

घणा पाप से हा, पापी से

नही बभी लवलेन ।

भून मुक्ताकर प्रेम भाग से

करो उमे पुण्यन ॥यही०॥

अहिंसा

यह समयकाल मिठाया है कि हिंसा पशुता का चिह्न है। जब एक पशु की तब में दूसरा पशु घा घुसा है तो उस चिह्न दोर निरा करन का ज्ञास पशु समाज में नहीं है। गुणना सत्ता, भगदत्त ही यहाँ अहिंसा रक्षा का एकमात्र साधन। तबिन मायाया मद्र ही पक्ष में अपेक्षाकृत अक्षयि विवसि रक्षा है। अहिंसा उभा पिताता अमया का सुन्दर गरिणाम है यही माया है कि प्रपेय धम में अहिंसा को विगी न विर रूप में अनामा ए। पर ता धम में अहिंसा की उच्चोक्ति में अपरेगा अहिंसा है।

जनधम की अहिंसा जीमा और जीन दा का भावना गिति है। जाधम की अहिंसा जहाँ आकमणकारी पर आक्रम पर पराजिता करी का बाध्य करती है यहाँ दारणापी दान न शुद्ध अत नरग में क्षमा प्रदात कर मुक्त सहादर के गमा अपनाते को भी बाध्य करती है। यीरा के माध धीरा ज्ञ व्यरहार परने की शिक्षा देते वाली विर में एकमात्र जनधम की अहिंसा ही है। जाधम की अहिंसा में उस पिता का हृदय है जो अपने पाण्डुरिय पुत्र को बठोर बन्धु रा पालन करन के लिये प्राण तक द देने के लिये कहता है। जनधम की अहिंसा सिसताती है सम्पूर्ण प्राणिया को अपने समान समझो। गुणवाना के गुणों में अनुराग तगे दु सी जीवा पर दया करो। इसी उच्चोक्ति के उद्देश्य में मानवता की पुण्यता और मानवीय जीवन की सायवता गन्निहित है।

ग्रान ससार में चारा घोर हिंसा का ही बोलबाला है। मर्त जीव निबल जाव के प्राण लने में तनिव भी नहा हिवकिचाता। हिंसा को हम हिंसा ही नहीं समझते 'वदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का नारा लगाकर धर्म के नाम पर भी हिंसा की जाती है। न मालूम कितने भूक पशुप्रा की बलि प्रनिवप धर्म के नाम पर दे दी जाती है। मनुष्य कितना भविवेकी हा गया है कि एक साधारण सी बात को भी नहा समझना कि जो व्यवहार हम दूसरा का अपन प्रनि पसद करत हैं हमें वहा व्यवहार दूसरा के प्रति भी करना चाहिए।

अहिंसा धर्म जगत-व्यापी है। हिंदु, जन, बौद्ध, ईसाई मुसलिम सिख पारमी सरने अहिंसा को धर्म की जड बनाया है पर फिर भी हिंसा का प्रचार हा रहा ह। अहिंसा सिद्धान्त का पूरा आचरण इनमें कही भी नहीं ह।

यो तो सनार हिंमारम्भ बना हुआ ह और मान्य मान्य अहिंसामय ह। नरका में नारनिया में मार काट मची रहती है पशुप्रा में सबल निवस को खा जाता है। बिनी आदि तो भूख में अपने ही बच्चो का खा जाती ह। मनुष्य मनुष्य के जन का प्यासा हा रहा है, इसी लिए ता अदालतो में कौजदारी के बहुतायत से बंस आत है और फांसी तथा बंद की सजायें होनी है।

पुरान पुरान आदि ग्रन्थो में अहिंसा का नियम होते हुए भी Thou shalt not kill तू बध नहीं करेगा, यह ईश्वर के १०व आदेश में कहा ह, फिर भी मनुष्य हिंसा नहीं करेगा। यह अथ स्वाधवग किया जाता ह।

यज्ञ क लिए पशु बनाए है। महापुरुष इवाहीम ने अपने पुत्र का काट कर ईश्वर भेंट करना चाहा, अत धर्म के लिए पशु मानव हत्या निषेध नहीं पमा लोग कहने हैं। विदेशों में तो पशु हिंसा

कम हा रही है पर भाग्य म यह उड़ना जा रही है । देगा
गर्ज्या म दगहर के दिन भसे पटते ह, गाली भाई के सामन
प्रतिदिन सस्य बकरे पटते हैं ।

बोद्ध धम म यद्यपि मासाहार निषेध है । पर चीन, जापान,
ब्रह्मा के साग फिर भी मास खाते हैं । धर्म के नाम पर हिंसा तो
सदा से होनी रही है । हिन्दु, मुसलमाना आदि के मगड़े इसके
प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । ईसाइयो के आत्मी भगते प्रसिद्ध ही हैं ।
राजनयिक भगड़े भी इसी के प्रमाण हैं । एटमबम को गिरा कर
जापान को टोकिया जस नगर को भूमिमात कर दिया है ।

बिना के गाम पर गोली देकर कुत्ता, खूहों, बंदरा का
मरवाना तो मध्य नागरिका का महज काम गमका जाता है
पशुमा की गिल्डियों काट कर तरह तरह की बकादियाँ बनाई
जाती हैं । अब तो एमे उहादुर बन रह हैं कि मच्छरमार,
मक्खीमार, टिट्टीमार पदा हो हेर हैं ।

आज बहादुरी से शिकार न कर छिप कर दोर नीतो का
मारने वाले मनुष्य-पशु पदा हो रहे हैं । आखो मे तो दीना
पर त्या करना बतलाया है, पर भाप बिच्छ को जो अपने का
बचाने को मारे मारे फिरते हैं, उनके मारने मे उहादुरी बनाई
जानी है । यदि मानव इनके प्रति ममता दिखावे तो वे भी न
काटें । माधुमा के गरीर पर साँप लिपटने पर भी नहीं काटते ।
ईसाई धम म नरकानिम एन ऐसे महात्मा हुए हैं कि जिनके प्रेम
से आकष्ट हो सिंहादिव जीन उनके चरणा मे लोटते थे ।

कुछ लोग घायल या रोग पीडित जीवों को तत्काल मार देन
से इससे ऊँचा मानने है तो वे मरन पुत्र स्त्री मित्रादि को रोगादि
ग्रस्त होन पर कपो नही मार डालने और इस प्रकार मानव घात
करने वाले को फाँसी का दण्ड क्यों दिया जाता है ? शरीर मे जब

नव स्वाम तत्र तत्र आग रहती है अतः गगन अस्तिन को मार डालना धर्म नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि हिंसा के बिना उन्नति नहीं हो सकती। अहिंसा कायर बनाती है समाज पतन का कारण है, यह उनकी भूल है। अहिंसा तो मनुष्य को बोर माहसी बनाती है, मामाजिक विनाश का कारण है। पूरा अहिंसा तो हम पाल ही नहीं सकते। दिगम्बर मुनि हो पालते हैं, श्रावक को बेवतन सकल्पी हिंसा ही स्वाज्य है, वारी हिंसाभा को हय समझ कर भी छोड़ नहीं सकता।

जन पुराणो स विदित होता है कि श्रीरामचन्द्रजी, हनुमान जी ने तथा पाशुवा ने जन गृहस्थ हाकर महान् युद्ध किये। बाद में हिंसा छोड़ मागी वन भोज पधारे। सम्राट चन्द्रगुप्त सम्पति, गयमल्ल, पुलकशिन चामुण्डराय आदि कलिंग के खारवेल गुजरात के कुमान्पाल आदि राजाधा न युद्ध करके भी धर्म की ध्वजा पहन्यी।

अतः जनधर्म पालते हुए भी सम्राट मनापति राजमन्त्री आदि सब ही कुछ हो सकता है जनधर्म में कोई क्वायट नहीं है।

जनधर्म में हिंसा को समझन के लिये हिंस्र स्थाना को समझना चाहिये। १ इन्द्रिय ३ वन आयु त्रामोद्वास्य १० प्राण हैं। एकेन्द्रिय वृक्ष के ४ द्वीन्द्रिय लम्बे ६ तीन इन्द्रिय कीड़ी के ७ चार इन्द्रिय मक्खी के ८ अस्त्री के ९ मनो के १० इस तरह प्राण होते हैं। मनमें जिनके अधिक प्राण होते हैं, उनके मारने में हिंसा और अधिक जानी है।

भावों की शुद्धता पूर्वक प्रवृत्ति करने पर यदि जीव की मृत्यु भी हो जाय तो पाप नहीं लगता यदि भावांश कटुपता हो और जीव आयु की प्रवृत्ति में न मरे तो भी पाप लगना ही है। कमी एन १ भी अनेका के मारने का पाप लगता है।

अनिच्छावश मारने पर भी पाप नहीं लगता आदि । यथा हाथर द्वारा जीव न बचने पर भी पामी नहीं लगती । सार्धं धरविन की ट्रेन पर बम पटवने वाल को भी दण्ड दिया जाता है । अतः हिंसा अहिंसा भावा पर ज्यादा आधारित है ।

सास्त्रो म हिंसा का स्वरूप यह कहा है राग द्वेष का आत्मा से पदा हाता हिंसा ह न पदा हाना अहिंसा है । अहिंसा अतः ही मुख्य है, बाकी अतः उसका गमभान के लिये कह है ।

हिंसा का दारोमदार भावा पर ज्यादा आधारित है । रोगी का दवा देन से, बपटो को साबुन म धोने से अनेको कीटाणु मरत है, किन्तु यहाँ भावो म दारोमदार को बचाना भाव है । अतः हिंसा नहीं होगी बल्कि विरोधी होगी ।

शायद अनाज धुगेगा, बपट धोरेगा, नहावगा, आहार विहार करेगा और डामे जीवो का बध होगा फिर भी हिंसक नहीं रहमावेगा । किन्तु अथ पादचात्यो से प्रभावित होकर ऐसे परिणाम होने लगे हैं जो स्वाय मे भरपूर हैं । मेज पर बागड रिपका कर मक्खी मारते हैं तेल छिड़क कर मच्छर मारत हैं । अनाजो के कोटे सड़ते रहने हैं उनके जिना जनता के प्राण जाते रहत हैं, यह अहिंसा है या हिंसा । अतः शुभ भाव युक्त प्रवृत्ति करना अहिंसा है दुर्भावयुक्त प्रवृत्ति हिंसा है ।

प्रश्नावली

- (१) अहिंसा की मायता किम किम सम्प्रदाय म है ?
- (२) आज मानव समाज की क्या स्थिति है ?
- (३) धर्म के लिये जीवो के बध मे क्या हानि है ?
- (४) क्या बौद्ध निरामिष भोजी हैं ?
- (५) कुत्ता, बदरो का मारने म क्या हानि है, क्यावि व मनुष्य

या जन गृहस्थ मुद्ध कर सकता है ?

भारतीय जन नरेशा का परिचय दीजिये ?

हिंसा और अहिंसा का सरल सुगोच स्वल्प बतलाइए ।

'जनिया को अहिंसा ने कायर बनाया है । ये कीड़ी की ता
ला करते हैं पर पचन्द्रिय पर दया नहीं करते । इसका
गप क्या उन्नर देंगे ?

अहिंसा सब माध्यागण योग्य किस प्रकार हो सकती है ?



अहिंसा

(५१ पाँचवाँ व गुणभद्रजी जैन)

(१)

मुक्तिजन मानस-अगोचर की हस्तों में,
जीवन की साधना रही है तू जमाने की ।
तु ही सा करानी सब प्राणियों में वसु भ्रात,
बुद्धि मित्राती धर्म मार्ग के निभाने की ॥
माता व गमाता तू तो पापक सहायक है,
त ही है प्रथम शीघ्री मोक्ष मुक्त पाने की ।
तेरी ही उपासना से भाग जानी मानाया,
मुक्त अहिंसा एव चित मोर गरी की ॥

(२)

स्वयं अप्रलय सब निजट अहिंसा के हैं,
पौष्टिक रसायन है मोर व बनाने की ।
जगत का जीवन रसी स ता निवा है आज,
बुद्धि है मयन सुख द्वार ललनाने की ॥
मित्र के समान उपरागी देखागिया की
युक्ति है अपूर्व निर्व्य भय का नमाने की ।
वीरा ता ता मिलता है मय ये अहिंसा में ही
इस से अहिंसा वस्तु एव वीर माने की ॥

(६३)

(३)

ताप बम टारपीड़ा टक राक्षसों के तुल्य,
 करते हैं गान्धि भग्न सक्ल जमान की ।
 हो रहा है रक्तपात आसुरी पुमाँघनों से,
 उठी सालमा है परदेश का दवान की ॥
 हिंसा से न छान्ति होती दुष्ट भावनाय कभी
 हाती अभिलाषा दूसरों को लूट लाने की ।
 हिंसा के समान हूँ न कोई विकराल पाप
 परम अहिंसा गाभा एक धीर बाने की ॥

प्रश्नावली

- (१) धीर बाने का चिह्न क्या है ?
- (२) इस कविता का भाषाई अर्थन भरल गब्दों म बतला-
- (३) इस कविता को याद करके मुखार सुनाए ।
- (४) इस कविता के रचने बाने का नाम बतलाइए ?

चित्रकला और मूर्तिकला का आदर्श देहली का जैन लाल मन्दिर

(१० राय-ग्राम पाठक एम० ए०, साहित्यरत्न, गात्रियाणा)

‘बीर’ ग उद्धत

भारत की राजधानी में लाल किले के सामने ही निर्मित जनमन्दिर के प्राङ्गण में प्रवेश कर मानव अन्तरात्मा एक अपूर्व शान्ति का अनुभव करती है। यह मन्दिर उपासना की पवित्रता के लिये जितना प्रसिद्ध है, उतनी ही पवित्रता तथा सुन्दरता पूर्ण कला की भी यहाँ पर प्रतिष्ठा की गई है।

आदर्श चित्रकला

मन्दिर के सामने के प्रवेशा में—जहाँ भगवान् महावीर स्वामी तथा अथ २४ तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं। दीवार पर जिस चित्रकला के दशन दशकों का होत है, उस चित्रकला में भारत की परम्परागत दो प्राचीन चित्र शक्तियों के सुन्दर सम्मिश्रण हैं। ऐसा आभास होता है जैसे कलाकारों ने राजस्थानी और मुगल शैली का समानुपात में समन्वय किया है।

राजस्थानी कला की वेप भूषा, शरीर अनुपात तथा भाव भंगिया का प्रयोग इस दीवार पर बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है। किन्तु मुगल काल की विशेष चमक तथा सुन्दर चित्रण की शोभा भी इन चित्रों में देखने को मिलती है। इन सभी चित्रों का विषय यद्यपि धार्मिक है, किन्तु इस विशेष चित्रण में किसी वगैरे विशेष पर ध्यान नहीं दिया गया है।

मूर्तियों पर सराहनीय कला

मन्दिर की भव्य प्रतिमाओं व दाना मात्र से ही जिस पुनो-
स्रोतना प्रवाह हृदय में बहता है वह हृदय की समस्त वक्षुपना
का स्वच्छद कर देता है। इन्हीं परिग्रता का बढान के लिये मन्दिर
का बानावरण जहाँ अपना सहयोग देता है वहाँ हमें मन्दिर में
बना मूर्तियों की भी सराहना करनी होगी।

जन मूर्तियों का प्रभाव

मन्दिर की मूर्ति कला उच्चकोटि की है और हृदय पर शान्ति
और राग्य का एक गहरा प्रभाव डालती है। मूर्तियों के शाल
नेत्रों का उड़े कोण से पथर की छानी पर अछिन्न किया गया है।
साथ ही सामन मुद्रा में। यह सभी मूर्तियाँ आकार व अनुपात
की दृष्टि से भी दोषरूण नहीं हैं। मूर्तियाँ अधिबान समरमर
की बनी हैं। एक मूर्ति काल पत्थर की भी देखन का मिलती है।
मूर्तियों की देख कर हमारे हृदय पर तीन प्रकार का प्रभाव
पड़ता है।

- १—अपूव गति का प्रभाव
- २—अनुपम वगम्य का श्रोन,
- ३—वैरात्म्य सौदय का प्रभाव

यह कलात्मक सौदय ही इन पूज्य मूर्तियों में प्रमुख गुण है।
इस विधाप गुण व कारण उपयुक्त दानों प्रभाव हमारे हृदय पर
पड़ते हैं। मूर्ति कला की स्वच्छता सरलता, रम्याभा की
स्तिम्यता इन सभी मूर्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होनी है।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इनमें कुछ मूर्तियाँ नितनी
पुरानी हैं किन्तु कल्प की दृष्टि से यह सभी मूर्तियाँ आधुनिक
ही जान पड़नी —

चित्रकला और मूर्तिकला का आदर्श देहली का जैन लाल मन्दिर

(१० राघव्याम पाठन मम० ए० साहित्यरत्न, गाजियाबाद)

वीर' म उद्घट

भारत की राजधानी में लाल किले के सामने ही निर्मित जनमन्दिर के प्राङ्गण में प्रवृत्त कर मानव अन्तरात्मा एक अप्रूप शान्ति का अनुभव करती है। यह मन्दिर उपासना की पवित्रता के लिये जितना प्रसिद्ध है, उतनी ही पवित्रता तथा सुन्दरता पूर्ण कला की भी यहाँ पर प्रतिष्ठा की गई है।

आदर्श चित्रकला

मन्दिर के सामने के प्रकोष्ठा में—जहाँ भगवान् महावीर स्वामी तथा अय २४ तीर्थङ्करो की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं। दीवार पर जिस चित्रकला के दशन दशमों को होते हैं, उस चित्रकला में भारत की परम्परागत दो प्राचीन चित्र शक्तियों के सुन्दर सम्मिश्रण हैं। ऐसा आभास होता है जैसे कलाकारों ने राजस्थानी और मुगल शैली का समानुपात में सम्मेलन किया है।

राजस्थानी कल्प की वेष भूषा, शरीर अनुपात तथा भाव भण्डों का प्रयोग इस दोवार पर बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है। किन्तु मुगल काल की विशेष चमक तथा सुन्दर चित्रण की शोभा भी इन चित्रों में देखने को मिलती है। इन सभी चित्रों का विषय यद्यपि धार्मिक है किन्तु इस विशेष चित्रण में किसी वग विशेष पर ध्यान नहीं दिया गया है।

मूर्तियों पर सराहनीय कला

मन्दिर की भव्य प्रतिमाओं व दशन मात्र से ही जिम पुनों-
खोना प्रवाह हृदय में बहता है वह हृदय की समस्त कल्पनाओं
को स्वच्छ कर देता है । इसी परिध्या को बढ़ाने के लिये मन्दिर
का वातावरण जहाँ अपना सहयोग देता है वही हमें मन्दिर में
बना मूर्तियों की भी सराहना करनी होगी ।

जान मूर्तियों का प्रभाव

मन्दिर की मूर्ति कला उच्चरोटि की है और हृदय पर गान्ति
और वैराग्य का एक महान् प्रभाव डालती है । मूर्तियों के शांत
नेत्रों का बड़े कीलसे पत्थर की छाती पर अङ्कित किया गया है ।
साथ ही आसन मुद्रा में । यह सभी मूर्तियों आचार के अनुपात
की दृष्टि से भी दोषपूर्ण नहीं हैं । मूर्तियाँ अधिकतर सामग्र्य
की बनी हैं । पर मूर्ति मान पत्थर की भी देखन को मिलती है ।
मूर्तियों को देख कर हमारे हृदय पर तीन प्रकार का प्रभाव
पड़ता है ।

१—अपूर्व गान्ति का प्रभाव

२—अनुपम वैराग्य का ज्ञान

३—आत्मिक सौन्दर्य का प्रभाव,

यह कलात्मक सौन्दर्य ही इन पूज्य मूर्तियों में प्रमुख गुण है ।
इस गान्ति गुण के कारण उपर्युक्त ज्ञान प्रभाव हमारे हृदय पर
पड़ते हैं । मूर्ति कला की स्वच्छता सरलता, रेखाओं की
स्निग्धता इन सभी मूर्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है ।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इनमें कुछ मूर्तियाँ विमली
पुराण हैं, किन्तु कल्प की दृष्टि में यह सभी मूर्तियाँ आधुनिक
ही जान पड़ती हैं ।

कलापूर्ण यातावरण

मंदिर व उच्चकोटि का निर्माण हे और उच्चकोटि के प्रति क्या की मुद्रता है। यह सब मिश्रित हमारे हृदय में समस्या पर गहरा प्रभाव डालने है। क्या ने गार्तगिरि की प्रति क्या व सतुनागिरि का हम मंदिर की प्रभावशाली रूप में साथ उम्र यातावरण को भी लगाना चाहिये, जो मन्दिर प्रवेश करा व साथ ही हमारी चेतना पर गहरा प्रभाव डालता है।

प्रश्नावली

- १—देहली के लाल मंदिर की चित्रकारी व गम्भीर में क्या विचार प्रकाश कीजिये।
- २—हम मंदिर की स्तूपों के दस्तान में क्या प्रभाव दर्शाते हैं हृदय पर पड़ता है ?
- ३—देहली में लाल मंदिर कहाँ है ? हम लाल मंदिर क्या कहते हैं ? यदि आपका हम मंदिर व निमाण तथा निर्माण समय के सम्बन्ध में कुछ भावूम हो तो बताइयें ?



श्री वेरिस्टर चम्पतराय

वरिस्टर चम्पतराय के प्रणिनामह ला० निहालचन्दजी तथा पिता ला० चन्द्रामलजी देहली में कूचा परमानन्द में रहते थे। आपकी माना प्रति धर्म परायणा थी। दशदान करके भोजन करती थी, अमृत्य भक्षण की त्यागी थी, रात्रि का पानी भी नहा पीता थी। एम ही ला० चन्द्रामल जी थे। एक बार आपन श्री महावीरजी के दशन विना दही छाड़ दिया पर बीमार हान पर बैठ न दही का प्रयाग बनलाया किन्तु आपन प्राण जान पर भी दही सेवन का विरोध किया।

आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हुई पर सब बाल कवलित हुई, मात्र चम्पतराय चौथे पुत्र हुए माता पिता का सन्ताप हुआ। चन्द्रामल जी के और भाइया के भी सन्तान न था। अत तीन घरों की दुनारी सन्तान यही थी।

बालक चम्पतराय में धार्मिक संस्कार आरम्भ से ही हा चल थे। माता पिता मामायािक में प्रवृत्त ता आप भी आस बन्द कर बैठ जात। चम्पतराय की आरम्भिक शिक्षा बाला महल के स्कूल से शुरू हुई। एक बार ८१० लड़का का पिछे पाठ याद न रहने पर मास्टर ने बहुत पीटा, उनमें चम्पतराय भी थे तबसे कई दिन तक वह स्कूल नहीं गये। अध्यापक न आकर उनके पिता से कहा, वे बोले वहाँ तो मार सिसाई जाती है, मैं नहीं जाऊँगा। इनके पिता बोले नू कमजोर होगा, ता अध्यापक बोला, यह तो मानीटर है। उस दिन में अध्यापक ने माग्ना हा छोड़ दिया। आपके ऊपर में माता की छत्रछाया ६ वय की आयु में ही उड़ गई। आपके वंशज सोहनलाल बाबेनाल के कोई

मस्तान १५०, वे एक प्रतिष्ठित जा श्री यनिक व्यक्ति थे, उन्होंने
 तम्पाराय को गा १ गिरा । अब तम्पाराय ७ वर्ष को था
 मे अग्रणी शूत्र मे पढ़ा तब श्री ठाठ राट मे चावू चम्पराय
 प्रगिद्ध हुए ।

आपका मित्राह लखी ने प्रगिद्ध वरीय लोगित के मन्दर
 ला० प्यालेलात जो श्री गुरुजी ने गाथ दिया । आपने गट स्टीफन
 फालिज मे मित्रा प्राप्त की । पन्नाइ इन्सुल्ट बरिस्टरी पन्ने
 गते गये । तभी मे ग० १८६७ मे लौटे ।

आप फाली के मुादमा के धर्मियुक्त या वरा नेते थे । अब
 आपने पाय गहा बादमे माता थे, पर माय मायेरा नेते थे । काम
 मत्पथित कर उमे पूरी सफाया दिलाते थे । चाहे पंसा द्वारा
 ही दक्षिणा धा पा लो थे । आपका जाना और गीना रा बड़ा
 सद्व्यवहार रहता था ।

एक बार हरमोर्द के मिस्ट्राट जज विवधा द्वारा छोटे वकील
 का अपमान कर पर आपने ११ माह तक बोन का बहिष्कार
 रक्का और अन्त मे विजय पाकर चन श्री । अब आप Uncle
 Jain कहलाते थे ।

आपका अपन ममुर के भाई श्री रगीनालजी बरिस्टर ।
 मत्पथित स्नेह था, उनके अज्ञाना स्वयंयाम से आपने पुत्र
 पका गा । आप मिश्र रहन लग तब आपको मरामा रामतीर
 के अग्रजी ग्रथो के पढ़ने का अवसर मिला तो आपका भूला
 वलात की ओर हो गया और वरा न की पुस्तक भी लिप्य
 लग पर कुछ शकाय गट जाती जिनका वलात मे उत्तर न था
 एक बार १९१३ मे आपका श्री देवद्वुमार मारा से परित्र
 हुआ । आपने उन शकायों की निवारण कर जन धम पढ़न व
 प्रेरित किया । अब आप पूणत मच्च जन हो गये । आपने



स्वर्गीय वरिस्टर चम्पतराय जी

घवाट-य तर्कों में और घम टिक नहीं पाते थे ।

सन् १९०२ में आप लगनऊ दिगम्बर जैन महामन्त्रा अधि-
वसन के सभापति बना दिये गये । आपने उन सुधारन के लिए
अटूट धम किया । महामन्त्रा का द्रव्य जा बिनी मज्जन पर गया
हुआ था श्री-मिन्नन्त का आगा न थी, उने निक्कनवादा और
महामन्त्रा के पत्र 'जन गणट' को सुधारना चाहि पर कुछ लोगो
का यह महसूस हुआ और आपका विरोध किया, तब आपने
महामन्त्रा से अलग हो जनवगी १९२३ में दिगम्बर जन परिषद्
का काम दिया ।

श्री सम्मे- निम्न तीषरा की-दा आपने अपने अपने द्रव्य स
तन्दन प्रिदी कौमिल म जाकर ली । आपने जन लों का निर्माण
किया जन मुनिया के बिहार पर प्रनिदध हटनाया । कुडचो के
प्रयाचारो का पानियामट में पहुँचाया । जन पुरानत्वा की
सोज की तुलनात्मक नया साहित्य बनवाया । दश विदशो म
जनधम पर व्याख्या दिये । सन्दन में रूपम जैन लायनेरी
कायम की । सदा समाज-सर्वी तयार किये । विद्यार्थियो स
सम्पक बडाकर उहें योग्य बनाया । अन म आप अपना सबस्व
जनधम के लिय त्याग स्वमवासी हुये ।

(१० ग्वी-द्रनाथ गाली)

प्रश्नावली

- १—श्री वरिस्टर चम्पनरायजी के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?
- २—श्री वरिस्टर साहब न जनधम का कैसे अपनाया ?
- ३—श्री वरिस्टर साहब न जनधम और समाज की क्या क्या
सवायें का ?
- ४—वरिस्टर साहब के जीवन से आपको क्या शिक्षायें मिलनी हैं ?

‘वीर’ महिमा

(श्री ज्योतिप्रसाद जी देवघर)

(१)

जन्म विधा तुष्टलपुत्री म जव भाते प्रभा,
भूमि हि न गई उसी क्षण मुर धान की ।
पतुरतिराय दय मध्य लोफ माहि धाय,
गव विधि गीनी जाय मेरगिर स्थान की ॥
प्रभु गो राक्षाय, वस्त्रामृषण गजाय तथा,
फिर घर नाय बटु कीरति वस्तान की ।
गुरु गाय उमगाय फोज मुदग प्रजाय,
सहस्र धति भाय श्री “वीर” भगवान् की ॥

(२)

क्षणायाई जात प्रभु भाग भव तज दीने,
मान प्रियातारणी ती मरा तत धान की ॥
नपम्मा धागी मार माह कर्मोंमे प्रीति तोरी,
दादग बरस माहि ज्याति जयो जान की ।
गुरु मनुजा १ धाय भावन मे पूजा उमे
जिसने कुमति मार सुमनि प्रदान की ॥
मुदित ही मनमाहि एक बार जय कहो,
तुद्ध बुद्ध गण सानि ‘वीर’ भगवान् की ।

(३)

कुमति निकट होय महामाह मद होय,
जगमग बुद्धि सबिबक जानवान् की ॥

नीति को दृष्टाव होय विनय का बढाव होय,
 उपज उद्गाह बढा हिय हरसान का ॥
 धम का प्रकाश होय दुर्गति को नाश होय
 वर्तत समाधि ज्यो पियूष रस वान को ।
 ताप परिपूर होय दोष दृष्टि दूर होय,
 दान की महिमा है 'वीर' भगवान् की ॥

प्रश्नावली

- १—इस कविता का पहिल छंद मे कवि ने किस दृश्य का वर्णन किया है ?
- २—वीर प्रभु के दान की महिमा का जिस छंद मे वर्णन किया गया है वह कथा सुनाइय ?
- ३—भगवान् महावीर ने किन कय तपस्या की और उस तपस्या के फलस्वरूप उनका क्या सिद्धि हुई ?



ईश्वर और सृष्टि

[प्रा० पुरुषोत्तमचन्द जैन शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०]

जन धर्म वैदिक धर्म के समान ईश्वर का अन्तरा शक्ति वाला, सदैवदात्मक मय सबका भार अविनाशी तो मानता है किन्तु उसका जगत का धर्मा और नियन्त्रा नहीं मानता है। जैन दान आत्मा को अनादि मानता है। जिस प्रकार वेदांत दर्शन में अविद्या के आवरण के दूर होने ही जीवात्मा ब्रह्मरूप बन जाता है, वही प्रकार जैन दर्शन के अनुसार जीवात्मा से कम का आवरण दूर होते ही वह ईश्वररूप हो जाता है। आत्मा राग द्वेषादि से निवृत्त होने के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और अपने भिन्न भिन्न कर्मा के परिणाम स्वरूप अनन्तानन्त योनियों में जन्म लेता रहता है। जब उसकी विषय शक्ति विकसित होजाती है वह अपने सत्त्वों द्वारा राग द्वेष के सस्वागों का गृह कर डालता है और कम बन्धनों में मुक्त हो जाता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है और फिर वही मुक्तात्मा सर्वज्ञ, आनन्द स्वरूप और सर्वशक्तिमान होकर परमात्म पद को प्राप्त होता है। जन दर्शन के अनुसार ईश्वर जमी स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नहीं है, किन्तु ईश्वर के समग्र गुण जीवमात्र में रहते हैं। इसलिए जन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरत्व पद प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान है। यदि जीव कर्मों के आवरण में दबी हुई उस शक्ति का विकास कर ले तो वह स्वयं ईश्वर बन जाता है। इस प्रकार जनधर्म ईश्वरत्व का वैदिक धर्म के समान कोई भिन्न स्थान

नही देना है किन्तु ईश्वर तत्त्व की मायना रखना ह और उसकी उपासना का भी मानता है । जो जो आत्माय कम बचनों से मुक्त हो जानो हैं वे सभी समान रूप से ईश्वर पद को प्राप्त हानो हैं । प्रविद्या या कम के आवरण के दूर होने पर जीवात्मा ही ब्रह्म या ईश्वर बन जाता है । हम विषय में वेदान्त और जन-दान नाना सहमत हैं ।

उत्तर बना चुके हैं कि जन धर्म ईश्वर का ससार का रचयिता और शास्वत नहीं मानता है । जो लोग ऐसा मानते हैं उनके प्रमाण और युक्तिय जन दृष्टि से मारगभित नहीं हैं । ईश्वर का ससार का कर्ता और शास्वत मानने वाल कुछ विद्वानों का कहना है कि केवल ईश्वर ही शास्वत और अनादि है, उसके बिना ससार की कोई वस्तु अनादि नही । इनमें से भी कुछ लोगों का तो कहना है कि कोई चीज नही या केवल ईश्वर या । ईश्वर ने ही से या अभाव से ही सारे ससार की रचना कर डाली । हमारे लोग कहते हैं कि ईश्वर ने अपने अन्तर में ही ससार को उ पत्र किया या रनाया । जन धर्मानुसार यह दावा ही मान्य नि मार हैं । प्रकृति के अध्ययन से हम पता चलता है कि ससार का कोई भी पदार्थ अभाव से उत्पन्न नहीं होता । प्रत्येक पदार्थ की कुछ पूर्ववस्था अवश्य होनी है और किसी भी पदार्थ का सबका अभाव नहीं होता । ससार में हम कोई उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जहाँ अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति होती हो । अत यह नहीं माना जा सकता कि ईश्वर ने ससार को अभाव से पैदा किया ।

जो लोग यह कहते हैं कि ईश्वर ने अपने में से ही विश्व की रचना की उनकी मायना भी ठीक नहीं जैचनी । ईश्वर सवज्ञ और पूरा है, इस सत्य को सब स्वाकार करते हैं । उस सवज्ञ और पूरा ईश्वर से यह ससार उत्पन्न और अपूरा कैसे हो

गवता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो ईश्वर में भी अपूर्णता और अप्रकृता के दाप आ जाते हैं। फिर ससार का तो बड़ा बड़ा भाग जन्म भी है सबका चेतन भगवान से जड़ की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है? इसके अतिरिक्त सृष्टि की आदि में जो ईश्वर ने सब आत्माओं को अपने में निराका तो उस समय सब आत्माएँ ईश्वर में मिली होने के कारण सब प्रकार के कर्म बाधना से मुक्त थी और इस कारण गुद थी, फिर उन सब आत्माओं को किस दोष या गुण के कारण भिन्न भिन्न ऊँची व नीच मानियों में जाने के लिये बाध्य किया गया। इन प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता और यह सिद्ध है कि ईश्वर ने ससार की रचना अपने में नहीं की।

इनके अतिरिक्त ईश्वर पूर्ण है और जहाँ पूर्णता होती है वहाँ किसी वस्तु की भी कमी नहीं हो सकती। यह तो पूर्णता शब्द से ही स्पष्ट है। इच्छा वहाँ पैदा होती है जहाँ किसी वस्तु की कमी हो। ईश्वर ने जब ससार की रचना तो उसने रचने की इच्छा अवश्य की होगी, क्योंकि बिना इच्छा के ससार की रचना हो नहीं सकती। जब इच्छा हो गई तो ईश्वर में अपूर्णता आ जाती है। अतः यदि ईश्वर को ससार का रचयिता मान तो वह पूर्ण नहीं कहला सकेगा।

जनम कहता है कि ससार अनेक प्रकार की भयानक महा मारी आदि व्याधियों, भूनाम्य, अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपा से होने वाला अकाल मृत्यु और अथ महायुद्ध आदि अनेक भयानक आपत्तियों में भरा पड़ा है। सुख का अंश कम है, किन्तु दुःख से पीड़ित प्राणियों का जड़न चारा और सुनाई देता है। क्या सबन और सबशक्तिमान ईश्वर ने ऐसे ससार की उत्पत्ति करना ही पसंद किया? क्या वह सबशक्तिमान होने का

अपनी शक्ति से ऐम ससार को उत्पन्न नहीं कर सकता था, जा मुख, शक्ति और ध्यान-द से परिपूर्ण होना ? ऐसी स्थिति में उसको भी नियंत्रण करने की परेशानी नहीं उठानी पड़ती । सबन और सबशक्तिमान ईश्वर ने पहले तो समार का प्रपूर्ण और शक्ति-रहित बनाया और फिर उसके लिए पूर्णता तक पहुँचाने के लिए नियम और धर्म बनाये । कोई माधारण बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी जान बूझकर किसी वस्तु को पहले बुरी नहीं बनाता कि बाद में उसका सुधार करना पड़े । अतः व सबन और सबशक्तिमान ईश्वर ने यदि इस समार का बनाया होता तो अवश्य ही यह पहले से ही पूर्ण और समर्थ होता ।

बुद्ध विद्वानों का कथन है कि ईश्वर ने ही समार को रचा है और इस कारण वह समार का जनक या पिता है । ससार में जो लोग दुःखी, गरीबी शोकाकुल और भूख-प्यादि भयानक मृत्यु के प्राप्त बनते हैं वह सब उनसे पूछ भय या शर्म भय में किये कर्मों का फल है इसका भोग टल नहीं सकता । जिस प्रकार पिता सद्गुण वाल पुत्र को पुष्कार देता है और दुष्ट कम करने वाले को अनुरूप दण्ड देता है इसी प्रकार ईश्वर भित भित प्रच्छ या बुरे कर्मों के अनुसार जीवा को दण्ड देता है । मार समार का शासन और नियंत्रण बड़ी करता है । यह मायता भी शक्ति की सगज पर टीका नहीं उतरती । सबन और सबशक्तिमान ईश्वर जसा चाहता वसा समार बना सकता था । उसने जीवा का बुरा करने की शक्ति क्यों दी ? पहले उनको बुरा कम करने की शक्ति दी और जब व उस शक्ति का प्रयोग करने लग तो उनका दण्ड दिया । कोई भी पिता पहले अपने पुत्र को बुरे कामों में प्रवृत्त कराये और फिर उह दण्ड दे भला बच्चा कोई बुद्धिमत्ता नहीं जा सकती । पिता अपने पुत्र को बुरा कम करने की प्रवृत्ति ही देगा ।

जैन मन्त्रव्य

जन धमानुमार वर्म पत्र निस्तान के निय नियन्ता की आवश्यकता नहीं माना जानी । अधम की मायता है कि गुद ना और जट यस्तु अताविता से भिने हुए नये मान है । ये दाता ही द्रव्य मसार ये उ पन्न करने में कारण है । आत्मा का वास्तविक स्वरूप एक ही होता है चाहे वह गुद हो या गुदान से मिला हो । मृग्य भौतिका दक्षिणा के रूप में आत्मा जट यन्त्रुओं में मिला हुआ है और दुर्भी कारण आत्मा में राग द्वेषादि भाव उत्पन्न होता है । वे विचार अन्ध या दर कर्मा के निमित्त कारण कारण एक तरह से माधन जन जात है, जिनके द्वारा कर्मों के परमाणु भाव आत्मा के साथ बंध ता प्राप्त होत रहत हैं । इन सम्बन्ध से एक प्रकार की शक्ति (कामाण शक्ति) संचित हो जाती है जिसे ताव उत्पन्न होता है ता आत्मा में मुख दृग उत्पन्न होत रागते । जय मह संचित शक्ति समाप्त हो जाती है ता जट यन्त्रु आत्मा में पुनर् हो जाता है या या दक्षिणे कि कम आत्मा से जुदा हो जात है । अन्त में जय आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है ता यथायाग्य पापना के जुटाने पर तब ही वास्तव शक्तिया अथान् रमों की निजग हो जाता है और आत्मा परमात्मा पद को प्राप्त हो जाता है ।

“जन धम की मायता ता यह है कि मृष्टि जा कर्ता या नियन्ता कोई बाहरी सत्ता नहीं मनुष्य स्वयं मिद और अपने भाग्य का निर्माण करने वाला है । वह किसी की दया और महायता का भिखारी नहीं, मनुष्य अपने ही चरित्र और नपावल से परमात्मपद अथान् ऐश्वर्य की प्राप्ति कर सकता है । स्वावलम्बन और स्वातन्त्र्य मनुष्य में सहज है इसके लिये किसी के सामने श्रावदन पत्र देने और हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं ।”

सृष्टि की उत्पत्ति

जन सिद्धान्त के अनुसार ससार की रचना मन्ना और अनान दो कारणों द्वारा होती है। दूसरे शब्दों में यह द्रव्या अर्थात् जीव या आत्मा पुद्गल, धम अधम आकाश और कान इन पट द्रव्या द्वारा होती है। इनमें से एक कारण तो जसे जीव सन्धान अर्थात् देखने जानने वाला है चेतना लक्षण सञ्ज्ञ है और शेष पाँच कारण अनान अर्थात् जड़ हैं। इन छह द्रव्या का समुदाय यह लोक है य छह द्रव्य सत्ता से हैं और सत्ता बन रहेंगे इसलिये यह लोक निय है। द्रव्य परिणामन सीता है इनकी पर्यायें बदलने की अपेक्षा यह जगत अनित्य है। यह जगत कभी नया बना नहीं, न कभी इसका चिन्तुल लोप ही होगा। अवस्था से अवस्थांतर होना रहा है और होता रहगा। इस प्रकार यह छह द्रव्य अनादि काल से विद्यमान हैं और रहग। किसी खास समय में इनके संयोग ने ससार की उत्पत्ति नहीं हुई किन्तु ससार अनादि है। इन ही छह द्रव्यों की भिन्न भिन्न परिवर्तनशील दशा और पर्यायों तथा पारस्परिक समाधान से ससार की सृष्टि होती है। यह जगत् अर्थात् ससार अनादि निघा है। न कोई इसका वर्ना है न कोई हर्ता है।

इन सब द्रव्यों का व्यापार एक दूसरे पर पड़ता रहता है इनमें उत्पन्न होने, नाश होने और स्थिर रहने की शक्ति है। इसी शक्ति का सत्ता ना कहते हैं। यन् सत्ता इन छह द्रव्या में ही रहती है जसा कि आप पहले भाग में द्रव्य के पाठ में पढ़ चके हैं। इस सत्ता का द्रव्या से नित्य सम्बन्ध है। इसमें यह स्पष्ट है कि ससार के उत्पन्न या नाश करने वाली शक्ति इन छह द्रव्यों के अंतर्गत ही विद्यमान है। ससार से पृथक् अथवा कोई शक्ति सत्ता का द्रव्या के अंतर्गत रहने वाली इस शक्ति

१ जनधर्म ईश्वर नहीं मानना ।

अब यहाँ प्रश्न होता है कि जैन मिद्धान् के अनुसार ईश्वर न तो ममार का वर्त्ता है और न जीम के समक भुगतान वाला नियोज है तो फिर उसका ससार से सम्बन्ध क्या रहा ? जब यह ममार के कामों में और उनकी व्यवस्था में स्तक्षप गहा कर सकता और न विमा को हानि या लाभ हो पड़ा सकता है तो फिर उसे ईश्वर की माना स, उ-की पूरा और उपासना करने से ससार का क्या लाभ ? उस ईश्वर का सम्बन्ध और अनेक शक्तिमत्ता से ससार को क्या फायदा जन लाभ जा मदिने में दयालया में जाकर भक्ति, पूजा उपासना, आराधना, ध्यान, चितवन आदि करते हैं फिर क्या मिद्धि हाता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में जन धर्म कहता है—प्रतिदिन के जीवन के अनुभव में हम देखते हैं कि जब हम किसी दुष्ट पुष्ट को देख लेते हैं या उसका चिन्तन हो आता है तो हृदय में दुः भाव उत्पन्न होने लगते हैं और दुष्ट की दुष्टता पर क्रोध आ जाता है । इसी प्रकार जब कभी किसी महात्मा या महापुरुष के हा दान करते हैं या उसका चिन्तन करते हैं तो चित्त में बड़ा प्रसन्नता और गान्धि उपजती है । पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं और सस्कार गुड बनते हैं । विश्व में बड़े-बड़े महापुरुष, वीरा, विद्वान् और ननाभा के जो पुत बना कर यत्र तत्र चौराहा और पाकी में रख गये हैं और जन्म दिवस महोत्सवों पर उनमें गली में शर तथा फूल मालाय डाली जाती हैं, उसका प्रयोजन भी यही होता है कि लोग उनका देखकर बसे महापुरुष, वी महात्मा या विद्वान् बनने का प्रयत्न करें । इसी प्रकार मन्दिर में भगवान् की प्रतिमा के दात करके तथा उनके स्मरण

चिन्तन करने से अन्तःकरण निमलता की ओर उन्ता है ।
 'प्रात्मा भगवान् के गुणों का अपनाने लगता है और राग द्वेषादि
 वकारों का त्यागने का प्रयत्न करने लगता है । प्रात्मा
 में विवेक शक्ति का विकास होने लगता है और प्रात्मा अपनी
 अंगुष्ठि में मूल कारण अज्ञान और मोह से छटकारा पाता है ।
 प्रात्मा की उन्नति प्रारम्भ होती है और वह पूरुषता की ओर
 बढ़ने लगता है । परमात्मा में जो गुण हैं वह प्रात्मा में भी हैं
 किन्तु रागद्वेषादि के कारण तथा कर्मावरण के निमित्त से छिपे
 हुए हैं । भगवान् के पूजन या चिन्तन से प्रात्मा उस पथ की
 ओर बढ़ने लगता है । जहाँ रागद्वेषादि का पद प्रात्मा में दूर
 हो जाता है । भगवान् के निरन्तर अचन स्मरण से प्रात्मा अपने
 वास्तविक स्वरूप का समझने लगता है अतएव आध्यात्मिक
 उन्नति धार मानव जीवन के उन्मेष के लिये भगवान् का
 पूजन, चिन्तन, स्मरण और भीतन गितान आवश्यक है । ५०
 मुगलकिशोरजी मुन्तार अपना पुस्तक मिदिसोपान में लिखते हैं—
 प्रावागमा विमुक्त हुए जिनका करना कुछ गप नहीं,
 प्रात्मलीन, मय दाप हीन, जिनके विभाव का लेन नहीं ।
 राग द्वेष भय मुक्त निरजन अजर अमर प' के स्वामी
 नगन भूत पूरा विवसित सत्चिदानन्द जो निष्कामी ॥१॥
 जब हुए अनन्त सिद्ध श्री वलमान है मन्त्रि जा,
 प्रागे हाय सबल जगा में, विबुध जना से मस्तुत जा ।
 उन मयका नन मन्तक हा में चढ़े ताना काल सग
 स्वस्व की शीघ्र प्राप्ति का, दृच्छक होकर रहित मुग ॥२॥
 कारण, उपाया जा स्वस्व है बही रूप सब अपना है,
 उन ही तरह सुविवसित हागा, इगम लेश में रहता है ।
 उनके चिन्ता-वन्दन से, निजस्व सामने आता है,
 पली निज ॥ ३ ॥ दान या शक्ति प्रेम उपजाता है

प्रश्नावली

- १—क्या ईश्वर सृष्टि का कर्ता है ? यदि नहीं तो सृष्टि की रचना
कब, कैसे और किस के द्वारा हुई ? अपना उत्तर प्रमाण
सहित दीजिये ?
- २—क्या ईश्वर सत्ता शक्त है ? यदि नहीं तो उसकी उपासना
पर क्या किस का प्रायः में की जाती है ?
- ३—जानमानुसार ईश्वर का क्या स्वरूप है ? जन कसे ईश्वर
की और किस स्तुति से उपासना करते हैं ?
- ४—क्या जन नास्तिक है ?
- ५—वैदिक तथा जनधर्म में क्या समानता है और क्या
असमानता है ?



स्वाध्याय

अधिरतर मनुष्य सम्पूर्ण जीवन सामाजिक ज्ञान प्राप्त करने में व्यस्त रह देते हैं। कुछ व्यक्ति विज्ञान के प्रमाणों के बिना हैं, कुछ इतिहास के कुछ अर्थों में पारंगत होते हैं। यदि उनसे पूछा जाय कि उनके जीवन का क्या उद्देश्य है उनके जीवन का क्या कार्यक्रम है तो वे कुछ भी उत्तर न दे सकेंगे। इसका कारण यह है कि वे व्याध्यात्मिक बातों का अध्ययन नहीं करते। हममें से अधिकतर व्यक्ति तो यह भी ज्ञान नहीं है कि आत्मा क्या है ? आत्मा परमात्मा का क्या सम्बन्ध है ? जीवात्मा और शरीर का क्या सम्बन्ध है ? पाप किस वस्तु है ? पुण्य किसे कहते हैं ? हमारा जीवन संसार में दुखी क्या है ? अपने जीवन को हम सुखी किस प्रकार बना सकते हैं ? ये सब महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। इनका उत्तर विद्वानों का ज्ञान है। इन सब बातों को यदि हम समझना चाहते हैं और अपने मनुष्य जन्म को सफल और साधक बनाना चाहते हैं तो उसका एक ही उपाय है कि हम प्रतिदिन धार्मिक बातों का स्वाध्याय करें। तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय ही सर्वात्म्य साधन है।

स्वाध्याय से बढ़कर कोई तप नहीं है। ध्यान में हमारा मन नहीं लगता। मन दृष्टना चयन है कि एक सेरिड में हुआ भील चलता है। जो चिन्तन करने के योग्य नहीं है उसका चिन्तन करता है नाना प्रकार के विचित्र भावों में।

न्याय गीति पूवक उपाजित सुख द्रव्य नहीं, फिर देव पूज
ता समागम भी नहीं मिल पाता । गमय क अभाव का प्रत्यक्ष
मनुष्य यज्ञन करता मिला है । गुरुमा का साहचर्य भी प्र
होता कटित हो रहा है । यदि सोनाम्य से बड़ी रोई सच्च गु
मित जाय तो ठाक दान की गई गा-बजा में भा लगना का
मुद्रित हो जाता है और भी कोई ऐसा माधन गुणम आन न
निगमें भा ही प्रवृत्ति गदधान की और जा सके । ऐसी दशा में
स्वाध्याय से बचकर रोई तप नहीं है । स्वाध्याय में कुछ कुछ
भा टिप जाता है । भा की उत्पत्ति होती है । इसमें मन
का भी बाल प्रवृत्ति घ नहीं । मन्त्र ही धयवा धय को
रमान । प्रयत्न पूवक मन का अन्तर्गत गदधानों का अध्याय
करता चचा करना, धर्मापदना दान सह तप स्वाध्याय है ।

स्वाध्याय नियमपूवक आ विषय पूवक करता चाहिए
शास्त्र गौरी पर रखा हो ठगवी और पर त रिय जाय । अर्ध
अवस्था त ही मठान हो । जा कृत्र पत्ता जाय अत्यन्त मना
ज्य म और कम मुज ही । इसी प्रकार शास्त्रोपदेश म धय
एकान्त में उसका टीक टीक अर्थ रिया जाय जिससे श्रोता पद
भात्र से उसका भाव अपना दृश्य म उतार सक । शास्त्र के उप
से अपने विचार पृथक् रखा जाय । अश्रद्धा युक्त त पडा जाय
जहाँ बड़ी जा कृष्ट गमक म त आवे वहाँ महातात्माओं और
अपिया के वापसी पर हृद अद्वान पूवक विचार करना चाहिए
अथवा विशय चानवात् पुरुषा से गवा ता समाधान कर मे
चाहिए । यदि फिर भी विसी शका का समाधान न हो तो अपने
भापता समझ धय रख । बाल की बाल न निकाले, वास्तवि
भाव समझने का प्रयत्न कर भाषा अत्यन्त सरल हो, बलवारा
जाल में उलझ कर न रह जाय । भाषा भाषा की प्राप्त करने क

साधन है, साध्य नहीं। धर्म प्रचार के लिए सदय सुगम भाषा का ही प्रयोग करना उचित है। भगवान् तीर्थङ्कर की वाणी सञ्जन न होकर उम समय की सब माधारण की भाषा ग्रन्थ मागपी थी, जिसे सब समझ लेते थे।

स्वाध्याय समय पर करना चाहिए। रात्रि स्वाध्याय करते समय अत्यन्त विनयवान् होना चाहिए। देव, गुरु, गुरु के प्रति नम्र भाव रखना चाहिए। जो कुछ पढ़ा जाय उसे ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए और सामाजिक कामनाओं का परित्याग कर देना चाहिए।

स्वाध्याय में आदर भाव हो गुरु का नाम नहीं छिपाना चाहिए। स्वाध्याय निराकुलता पूर्वक अध्ययन पठन पाठन का कहते हैं। ज्ञान करने से आत्म-वन्द्याण होना है पर-वन्द्याण होना है गान्धि होनी है।

स्वाध्याय से ही हितार्थिता का, योग्यता का आत्मा में भद्र का प्राप्त होता है। यह धर्म प्रकाश है जिनके आधार से हम मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्नावली

- (१) स्वाध्याय किस कहते हैं ?
- (२) स्वाध्याय की वर्तमान काल में क्या उपायगिता है ?
- (३) स्वाध्याय किनसे प्रकार से किया जाता है ?
- (४) स्वाध्याय की आठ विधियाँ कौन सी हैं ?
- (५) जिन साधुओं के दानापदेन से क्या लाभ है ?
- (६) स्वाध्याय कब, कसे, कहाँ और क्या करना चाहिए ?
- (७) वसे शास्त्रों का स्वाध्याय हितकारी है ?
- (८) स्वाध्याय में समय वस्त्र अपना अभिप्राय प्रकट कर

स्वर्गीय पंडित श्री गोपालदाम जी वरेया



पंडितजी का जन्म विवम मम्बत् १९०३ के अत्र मास म
भारत के मुप्रसिद्ध नगर आगरे में हुआ था। आपके पिताजी का
नाम लक्ष्मणदास जी था। आपकी जाति "वरेया" और गांव
एधिया" था। पंडितजी के बाल्यकाल के विषय में कुछ विवेक
पता नहीं है। वे उन इतना मान्य है कि आपके पिताजी की
मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। अपनी मानाजी की कृपा से ही
पंडितजी मिडिल स्कूल हिंदी और छठी, सातवी कक्षा तक अपने ही
भाषा पढ़ गए थे, उस समय धर्म की ओर आपकी ओर भी रुचि
नहीं थी। गलना धूरा मोन मज उठाता, तम्बाकू सिगरेट
पाना, शेर और चौकोने आदि गाना आपने दैनिक गाय थे।

१६ वर्ष की अवस्था में आपने अजमेर के रेनवे दफ्तर में
पदार्ह रूप से भाग्य पर नौकरी करली, उस समय आपको
जायम से जतना भी प्रेम नहीं था कि कम से कम जित-दशन
ता प्रतिदिन कर लिया १८। एक बार अजमेर के जट मंदिर में
१० सोहनलाल जी नाम के एक जन विद्वान् से आपका परिचय
हो गया, उनकी संगति में आपका चित्त जित धर्म की ओर
आकर्षित हुआ और जनधर्म १ ग्रन्थ का स्वाध्याय करने लगे।
अजमेर में आप छ मास वर्ष तक रहे, इस बीच में आपका
अध्ययन बराबर जारी रहा। मस्तिष्क का ज्ञान भी आपको यहाँ
ही प्राप्त हुआ। यहाँ की जन पाठशाला में ही आपने "तपु
बौमुदी" "जन द्र व्याकरण" का कुछ अंश और "पाय-

दोषिका" ये तीन ग्रन्थ पढ़े । 'गोमट्टसार' का अध्ययन भी आपने उसी समय शुरू कर दिया था । अजमेर में रहने से वहाँ के मृप्रसिद्ध (सानीपत निवासी) विद्वान् प० मधुगदास जी से भी आपका बहुत मेल जास हो गया था ।

स० १९४८ में १९५७ तक पंडितजी बम्बई में रहे । इन बीच में आप वहाँ नौकरी एजन्सी, दसासी दुकानदारी आदि का काम करते रहे । बम्बई १९५८ में पंडितजी ने बम्बई निवासी सेठ नाथारणजी गांधी के फर्म के मालिक सेठ रामचंद्र नाथाजी व साक्ष में मारना में आइन की दुकान खोलनी, यह काम कोई चार वर्ष तक किया इसके बाद दो वर्ष के लिए शोलापुर चले गए वहाँ से फिर मारना आकर अपना कारोबार करते रहे ।

पंडितजी के सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ बम्बई में होता है । बम्बई में पंडित धनलाल जी नाम के प्रसिद्ध विद्वान् से आपकी बड़ी मित्रता थी । लगभग इन दोनों को 'दो शरीर एक प्राण' कहा करते थे । प० धनलाल जी और प० गोपालदास जी के उद्योग से ही मागगीप गुल्फा १४ स० १९४८ का बम्बई में एक 'दि० जन सभा' की स्थापना हुई । प० धनलाल जी आपके प्रत्येक कार्य में प्रधान सहायक थे । स० १९५० के श्री जम्बूस्वामी के मेले में बम्बई सभा ने आपको मदुरा भेजा और आपके उद्योग से वहाँ पर भारतवर्षीय दि० जन महासभा का काम शुरू हुआ । महामभा के महाविद्यालय के प्रारम्भ का काम आपके द्वारा होता रहा । लगभग स० १९५३ में भारतवर्षीय दि० जन परीक्षासंघ स्थापित हुआ और उसका काम आपने वही कुशलता के साथ सम्पादन किया । स० १९५६ में आपने दि० जन सभा बम्बई की ओर से "जनमित्र" नाम निबालना - १ । स० १९६५ के अठारहव

पंडितजी इसके सम्पादक रहे, यह पत्र अब तक बाहर चालू है। जाति और धर्म की अपनी योग्यतानुसार अच्छी सेवा कर रहा है। बम्बई प्रांतिव मभा के मंत्री का काम भी पंडितजी आठ दस वर्ष तक बराबर करते रहे। इस मभा के द्वारा संस्कृत विद्यालय, बम्बई परीक्षालय, तीर्थ क्षेत्र उपदेशक भण्डार आदि के बहुत ही उपयोगी कार्य हाते रहे हैं। ये सब पंडित जी की ही निमल, पवित्र भावनाओं तथा उनके अटूट परिश्रम का फल है।

पंडितजी ने जाति सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिये एक पाठशाला और छात्राश्रम की स्थापना की। यही पाठशाला भाज जैन समाज में श्री गोपालदास जन सिद्धान्त विद्यालय मारना' का नाम से प्रसिद्ध है। इस विद्यालय से पंडितजी को बहुत मोह होगया था, इस ही वह अपना सवस्व समर्पित थे। पंडितजी बड़े ही स्वात्माभिमानी थे। किसी से भी एक पैसे तक की याचना करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। शुरू शुरू में पंडित जी विद्यालय के लिये मभाओं में सहायता माँगने के बहुत विरोधी थे। परन्तु पीछे आकर सेवा भाव तथा विद्या प्रचार के भावों के सामने वह स्वाभिमान विद्यालय के प्रेम की धारा में गल गया और उसके लिये भिक्षा दीजिये' कहन में भी उन्हें सबीच नहीं होने लगा।

यद्यपि पंडितजी की पठित विद्या बहुत ही थोड़ी थी, तथापि वे उच्चकाटि के धुरंधर विद्वान् पंडित थे। आपने अपने स्वावलम्बन, शीलना और सतत् अध्यवसाय से पांडित्य प्राप्त किया था। पंडित जी जीवन भर विद्यार्थी रहे, उनका पांडित्य अमामास्य था, वे गाय और धर्म शास्त्र के बजोड़ विद्वान् थे। इस बात को केवल जन ही नहीं किन्तु बलवत्ते के बड़े-बड़े महामहोपाध्याय और तब वाचस्पति भी मानते थे। विष्णु की बीसवीं शताब्दी के आप सबसे बड़े जन पंडित थे। आपकी

प्रतिभा और स्मरण शक्ति यही विलक्षण थी ।

पंडित जी की व्याख्यान देने शक्ति भी बहुत अच्छी थी जन सिद्धान्त के विषय अथ विषयो पर आप बहुत कम बोलते थे । आप लगानाग दाश तीन-तीन घण्टे तक व्याख्यान दे सकते थे । आपके व्याख्यान सिद्धान्त के ही काम कहते थे । शास्त्राय करने की शक्ति भी आप में विलक्षण थी । भजमर आदि क कई बड़े-बड़े शास्त्रों में आपकी वास्तविक प्रिय हुई । बड़े से बड़ा विद्वान् भी आपके प्राय बहुत समय तक न टिक सकता था । पंडित जी की वैचन शक्ति भी अच्छी थी । आपको जन समाज का एक अच्छा मखक कहा जा सकता है । आपके बनावे हुए तीन ग्रंथ हैं । "जन सिद्धान्त दर्पण" सुगीला उपनाम और 'जन सिद्धान्त प्रवणिका' य तीना ही ग्रंथ अच्छे महत्व के हैं । इन ग्रंथों के प्रतिरिक्त पंडित जी ने सब धर्म जन भूगोल आदि कई छोट छोटे टुकड़े Tract भी लिखे हैं ।

पंडित जी का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल था । इस विषय में वे पंडित माली में अद्वितीय थे । उन्होंने अपने चरित्र से यह दिखाना किया कि ससार में व्यापार मय और मत्तौय जन हुए रहकर किया जा सकता है यद्यपि इन न वता के कारण आपका बार बार असफलतायें हुई, फिर भी आपने इन न वता का मरण पयत्र अथवा रीति से पालन किया । बनी बड़ी परीभाषा में भी आप इन वता से नहीं टिगे । एक बार मंडी में आग लग गई और उसमें आपका तथा अथ व्यापागिया का मान्न जल गया । माल का बीमा बिका हुआ था । दूसरे लोगो ने तामा कमनिया में इन समय गुरु रुपये बसूने लिए जितना का माल था उसमें कहा भाग का वना दिया । पंडित जी में भी कहा गया आप भी इस समय अच्छी कमाई कर सकते हैं पर आपने एक काटी भा अधिक नहीं ली । रात और डाकघर का यदि एक पता भा

अधिक आपके यहाँ भूल से आ जाता था, तो उसे लौटाये बिना आपको चैन नहीं पड़ती थी। रिश्ते देने का आपको त्याग था, इसके कारण आपको कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था पर आप उसे चुपचाप सहन कर लेते थे।

एक बार पंडित जी बम्बई में मपरिवार आगरे आये। घर आकर कई दिनों बाद माग व्यय आदि लिखा तो मालूम हुआ नौकर ने आपके तीन वष के वस्त्र का टिकट नहीं लिया। मालूम होने पर बड़ी आश्चर्य गानि हुई और आपने तत्काल स्टेशन मास्टर के पास जाकर क्षमा माचना की और टिकट का मूल्य उनकी मेज पर रख दिया। स्टेशन मास्टर ने बहुत समझाया कि अट्ठाई वष से अधिक आयु वाले का टिकट लेने का नियम है तो, पर कौन इस नियम का पालन करता है ? हम तो चार पाँच वष के बालक को नजरअदाज कर देते हैं। अपने आप टिकट का पमा देन काई हमारे पास आया हो हमें ऐसा भूलने काभी कोई नहीं मिला। आप उठे भोले मालूम हात हैं, यह दाम आप उठा नोजिए मय या ही चला करता है। परंतु पंडित जी धूल और चालाक दुनिया में लिये सचमुच ही मूल्य थे। आप दाम छाड़कर चले आये और बुद्धि पर जोर देन पर भी अपनी इस मूल्य का हस्य न समझ पाये और जीवन भर ऐसी भूलना करते रहे।

पंडित जी को काई भी व्यगन नहीं था। खान पान की शुद्धता का आपको बहुत म्याल था। पान पीने की अनेक वस्तुएँ आपने छोड़ रखी थी। उन विषय में आपका व्यवहार मिलकुल पुराने ढंग का था आपका रहन सहन का ढंग भी बहुत ही सादा था। कपड़े आप स्नान साधारण पहनते थे, उनकी आर आपका स्नान कम ध्याता रहता था कि अनजान लोग आपका कठिनाई में पहचान सकते थे। घम कायों में आपने अपने जोरा में कभी भी एक पमा तक नहीं लिया।

पंडित जी मे गजब का उत्साह और गजब की काम करने की लग्न थी, वे घुन वे पक्के थे । जो काम उनका जच जाता था उसे वे बरफ ही छोड़ते थे । आपनो अपनी शक्तिया पर पूरा विश्वास था, इसी कारण आप कठिन म नठिन काय म भी हाथ गलने मे नहीं झिझकते थे ।

“वरपाजी ” बड़े निर्भीक थे जिम बात का आप मध्य समझते थे, उनको वह देने मे आपका जरा जी सकौच नहीं होता था । चापलूसी और गुशामद से आपका बड़ी घृणा थी । वे बड़े बड़े लक्षपनिया और करोड़पनिया का उनके मुह पर खरी खरी सुना दिया करते थे । ललौली के दम्मा और घीसा घग्गवाला के बीच मे जा पूजा क अधिकार के सम्बन्ध मे बाट मे बस चला था उसमे आपन निर्भीक होकर साक्षी हो थी कि दम्मा को पूजा का अधिकार है, जन जनता का विश्वास हमस बिन्दुन उल्टा है, परन्तु आपने हमको जरा भी परवाह न था । इसविषय का लेकर सेठो न और कुछ श्रय पंडितो ने बड़ा ऊषम मचाया पंडित जी को हर तरह से बदनाम करने की वाशिंग की परन्तु अन्त मे जनता न पंडित जी के सत्य को समझ दिया और वह गान्त हो गई । निर्भीकता मे तथा सयाथ का प्रतिपादन करने म वे अद्वितीय थे ।

पंडित जी एक विचार गील विद्वान् थ । अपनी विचार शक्ति के बल से पदार्थ का स्वरूप हम ढग से बनलात थे कि उसमे एक प्रकार की नूतनता जान पड़ती थी ।

पंडित जी की प्रतिष्ठा और सफलता का सबसे बड़ा कारण उनकी नि स्वाय सेवा या पगोपवार शीलता का भाव था । इसी गुण से वे हम समय के सबसे बड़े पंडित कहला गए । जन समाज क लिए आपने अपने जीवन मे जा कुछ किया उसका बदला कभी नहीं चाहा । जैन धम की उन्नति हा, जन सिद्धान्त का

केवल इसी भावना से आपने निरन्तर परिश्रम किया । आपने निरन्तर धृति और दयानुदासी के कारण लोगों को आप पर दृढ़ विश्वास था । अत्यन्त राज्य की ओर से पठित जी का मोरना में आन्तरी मजिस्ट्रेट का पद प्राप्त था । वहाँ के सम्बन्ध आप काम में और पचासी तोट के भी आप में पर था । सम्बन्ध प्रान्तिन मन्त्र ने आपका स्वाहाद बारिधी' जैतन्य प्रान्तिनी मन्त्र इत्यादि न आपने 'यानीभगा वेगरी' और यत्नरत के यत्नमत्त संस्कृत बालिज व पठिता न 'वाचस्पति' की पदवी प्रदान की थी ।

जहाँ तक मान्य है पति जी ने पुत्रुम्भ सम्बन्धी मुन भी प्राप्त की हुमा । आगरी स्त्री का सम्भाव बहुत ही पर्यन्त, क्रूर कठोर तथा जिद्दी था । वह पठित जी को बहुत ही तप दिया करती थी । पठित जी बहुत ही सहनशील थे । उनकी स्त्री का कुछ भी उनको कहनी मुननी थी वे सब कुछ चुपचाप सहन कर लिया करते थे । पठित जी बहुत सीध और भोने थे, आपके भोने पन से धून लोग बहुधा लाभ उठाया करते थे ।

पठित जी का एकाग्रता का बड़ा अभ्यास था । कोलाहल और भ्रष्टाचार के स्थान में वे घटा तक निरास में सीन रह सकते थे । आपकी स्मरण शक्ति भी उनी वितराम थी । वर्षों की बातों को वे स्मरण कर सकते थे । पति जी बड़े देश भक्त थे, विदेशी रीति रीवाज से आपको उहुन भर्त्सित थी । जब तक कोई बहुत ही जहरी काम नहीं पत्ता था जब तक आप अग्रजी भाषा का उपयोग नहीं करते थे निन्दी से आपको बड़ा ही प्रेम था ।

अन्त के वर्षों में पठित जी का शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था ऐसा होने पर भी आप अपने धार्मिक कार्यों तथा समाज-सेवा के करने में नहीं चकते थे । पठित जी का स्वयंवास चन्द्र मुदी ॥

सदत् १९७४ में हुआ। आपकी मृत्यु से जन सम्राज का एक ऐसा स्थान खाली हो गया जिसकी पूर्ति आज तक नहीं हो पाई।

प्रश्नावली

- (१) प० गोपालदास जी का जन्म कब कहा और किस जगह में हुआ ?
- (२) पंडित जी का बाल्यकाल कैसे गुजरा ?
- (३) पंडित जी ने धर्म गिन्या तथा लौकिक गिन्या कहीं तक कस प्राप्त की ?
- (४) पण्डित गोपालदास जी की विद्वत्ता के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट कीजिये ?
- (५) पंडित जी का आधुनिक जीवन और धार्मिक तथा सामाजिक जीवन कैसा रहा ?
- (६) जैन सम्राज के सम्बन्ध में पंडित जी की भेवाओं का कुछ बयान कीजिये ?
- (७) कहा जाता है कि पंडित जी एक बड़ निर्भीक तथा स्वतंत्र विचार के विद्वान् थे क्या यह ठीक है। उत्तर सम्प्रमाण दीजिये ?
- (८) 'पंडित जी बड़ा भोले और पक्के दयानन्दर थे' इस वाक्य की सत्यता पण्डित जी के जीवन की किसी भी घटना द्वारा सिद्ध कीजिये ?
- (९) पंडित जी की जीवनी से आपका क्या लाभ होता है ?
- (१०) पंडित जी का कौटुम्बिक जीवन कैसा रहा ?
- (११) प० जी की सफलता तथा प्रतिभा के मुख्य कारण क्या थे ?
- (१२) पंडित जी ने जो पुस्तकें लिखीं उनके नाम बताइयें ?
हिन्दी भाषा के प्रति पंडित जी का क्या भाव था ?

तत्त्व

गाधारण लोग भी बातोंबातें करते हुए यह कहते सुने जाते हैं कि "तत्त्व की बात यह है।" तत्त्व से उाका अभिप्राय सार से है। इसी प्रकार जन धर्म के प्रवक्तों ने धर्म के सार तत्त्व वर्णन किए हैं। उन मातों तत्त्वों का यदि श्रद्धा हो जाय और उन पर आचारण भी होने लगे तो माक्षार्थी जीव मोक्ष मार्ग पर आसु हो सकना है। श्री पूज्य उमास्वामीजी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र में बताया है—

सम्यग्दर्शनं तान चारित्र्याणि भाग्यमार्गं "

तत्त्वार्थ श्रद्धान् सम्यग्दर्शनम् तत्त्व का जो अर्थ है उस पर श्रद्धान् ही ना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की महिमा यदि कोटि-कोटि जिह्वा द्वारा गायी जाय, ता हम उसका पार नहीं पा सकते। व सम्यग्दर्शन ही गहन तत्त्वों के श्रद्धान् से ही तो प्राप्त हो सकता है। व नर मायमाग के स्तम्भ हैं। उनका ज्ञान होने पर वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हमें हो जाता है और वस्तु स्वरूप का ज्ञान हाते ही अवधार का पर्दा हमारी आत्मा से हट जाता है और हम अपने सच्च स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। सम्यग्दर्शन तत्त्वों का ज्ञान होना आवश्यक है।

उन सात तत्त्वों में से जीव अजीव आसुव और यध का स्वरूप आप पहने पढ़ चुके हैं। अत्र भाग्य स्वर, निजरा और मोक्षतत्त्व का वर्णन करण। समानी जीव कर्मों के आसुव और यध के कारण ही चौरासी ताग्य मानियों में परिभ्रमण करता हुआ आदि बाल से नाना प्रकार के दुखों को भोग रहा है। समान परिभ्रमण से बचने के नियम जरूरी हैं कि जिन जिन

भावों से कर्मों का आस्रव और बंध हाना है उन भावों से बंध और उन कारणों का दूर कर । आस्रव का प्रतिपदी सवर है । सवरतत्त्व—आस्रव का न होना अर्थात्—

आते दृष्टे कर्मों का रोक देना सवर है । जैसे नाथ म छिद्र होजाने पर उससे पानी भरने लगता है तो उस छिद्र में डाढ़ लगाकर पानी का नाव म आने से रोक दिया जाता है । वैसे ही गुद्ध भावों के द्वारा कर्मों के आस्रव का रोक दिया जाता है ।

सवर के भी दो भेद हैं । नाथसवर और द्रव्यसवर । जिन परिणामों से कर्मों का पदा हाना बंद होना है वह भाव सवर कहलाते हैं और उनके स्वतन्त्र सञ्चालन परमाणु कमरूप नहीं होते उनको द्रव्य सवर कहते हैं ।

अपनी गुद्ध आत्मा के ही भाव म मग्न रहना राग द्वेषादि विकारों से रहित होना ही कर्मों का न पदा हाने का कारण है । ऐसी गुद्ध अवस्था पदा हान के कारण पञ्चमहाव्रत पञ्च समिति तीन गुप्ति, दशलक्षण धर्म, आग्नेय भावना और वार्त्तिक परीपह जय के स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना तथा इनका धारण करना पालन करना है । अथ आग सवर के इन कारणों की पृथक् पृथक् व्याख्या की जाती है ।

व्रत—निश्चय से राग-द्वेष आदिक विकल्पा से रहित होना नाम व्रत है और इस अवस्था को प्राप्त करने वाले अहिंसा सत्य, अचीय अह्मचय आर अग्रिमिह यह पाँच व्यवहार रूप कारण हैं । ये ही पाँच व्रत कहलाते हैं ।

(क) कषाय से अपने व पर जीव के नाथ प्राण या द्रव्य प्राण को पीडा न देना अहिंसा व्रत है ।

(ख) कषाय से अपने व या पर व हात्तिकारक अप्रगस्त वचन

न बोलना मत्पत्रत है ।

ग) वषाय से बिना दिये हुए किसी के पदार्थ को ग्रहण न करना अर्चीय व्रत है ।

घ) पुरुष या स्त्री से मधुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है ।

ङ) अपनी निज आत्मा का पर पदार्थों से भ्रमत्व भाव न होना अपरिग्रह है ।

समिति—अपना शरीर से अन्य जीवों को पीछा न होने की इच्छा म यनाच्चार रूप प्रवृत्ति करना समिति है । यमों के पत्न होने का रोक्ने की पूरी पूरी कोशिश त्यागी मुनि हो कर सकते हैं, उनका सावधानता पूर्वक क्रिया करना भी वर्मा के आन्ध्रव का रोक्ने में सहकारी कारण है । इसी को समिति कहते हैं । यह सावधानता पांच प्रकार की है । ईया, भापा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग ।

(च) ईया समिति—दिन में चलना, रात्रि को न चलना ऐसे रास्ते पर चलना जिन पर मनुष्य और पशु आदिक चलते रहे हैं । आदिम्ना आहिस्ता आगे चार हाथ प्रमाण भूमि का गायत हुए चलना, चलते हुए इधर उधर न देखना । सारांश यह है कि ऐसी सावधानता से चलना जिससे किसी जीव की हिंसा न हो ।

(छ) भापा समिति—हितमित वचन जानना, अर्थात् प्राणीमात्र के हितकारी प्रमाणों के सन्देह रहित प्रिय वचन कहना भापा समिति है ।

(ज) एषणा समिति—दिन में एक बार निर्दोष शुद्ध आहार शास्त्रोक्त विधि में नाना एषणा समिति है ।

(न) आदान निक्षेपण समिति—दास, पीछी और कमण्डल

आदिक मुनि के पास होता है उसका व नेत्रा से देखकर और पीछी से शोध कर इस प्रकार रखना उठाना कि किसी जीव को बाधा न हो, आदान निक्षेपण समित है ।

(क) उ मग समिति—मत्त, भूत्र, कफ आदि को इस प्रकार सावधानता से डालना जिममे जीवो का किसी प्रकार की बाधा न हो ।

गुप्ति—गुप्ति तीन होनी हैं—मन गुप्ति, वचन गुप्ति आर काय गुप्ति । मन, वचन और काय के व्यापार को रग करना—कायू मे लाना व रोचना गुप्ति कहलाता है ।

वशलक्षण धम

धम—उत्तम क्षमा उत्तम मादव उत्तम आजव उत्तम शौच उत्तम सय, उत्तम समय, उत्तम तप उत्तम त्याग उत्तम आर्षिचय उत्तम ब्रह्मचय ये दश धम हैं ।

१—उत्तम क्षमा—दुष्ट लोगो के द्वारा तिरस्कार हास्य ताटन मार्ग आदि क्रोधकी उत्पत्ति के कारण मिलने पर भी अपने मे मामध्य हाने हुए भी परिणामो मे क्रोध वपाय ब्य मतिनता न लाने को उत्तम क्षमा कहत है ।

१—उत्तम मादव—कुलमद जातिमद रूपमद, पानमद, धनमद वलमद तपमद प्रभुतामर इन आठ प्रकार के मद को न करने का नाम उत्तम मादव है—मानरूपाय का अभाव होन पर ही मादव नामा गुण आत्मा मे प्रकाशमा होना है ।

१—उत्तम आजव—मत्त, वचन काय को सरसता का नाम आजव है । मायानारा यथात् छन कपट के अभाव का नाम आजव है ।

१—उत्तम शौच—अन्तरग मे लाभ वपाय के अभाव हान का मे शरीर का पवित्र रखने को शौच कहत है ।

५—उत्तम सत्य—भीठे हितमित, स्व परहितकारी सत्य वचन बोलना, अप्रिय, कटुक, कठोर, कु वचनों का त्याग करना उत्तम सत्य है ।

६—उत्तम मयम—पात्रा इन्द्रिय और माया निरोध करना तथा यह काय के जीवों की रक्षा करना सयम कहलाता है । सयम दो प्रकार का होता है (अ) इन्द्रिय सयम (आ) प्राण सयम । इन्द्रियों के विषयों में राग भाव के अभाव को इन्द्रिय सयम कहते हैं । यह काय के जीवों की रक्षा करना प्राण सयम है ।

७—उत्तम तप—मात्र बड़ाई के भाव बिना, कर्मों के क्षय करने के निमित्त अनशन आदि बारह प्रकार के तप करने तथा उच्छ्वास के निरोध करने का नाम तप है । यह तप दो प्रकार का होता है, अतरंग तप तथा बाह्य तप । बाह्य तप अनशन, ऊनोदर, विविक्त गम्यासन, रमपरित्याग काय क्लेश और वृत्तिपरिसह्या भव रूप यह प्रकार का होता है और अतरंग तप भी यह प्रकार का होता है —विनय, वैराग्य, प्रायश्चित्त, ध्युत्साह, स्वाध्याय और ध्यान ।

८—उत्तम त्याग—नवविभाव भावों का त्याग करना, निज चेतन स्वभाव में मग्न रहना निश्चय त्याग है । व्यवहार में त्याग दाता को कहते हैं, यह चार प्रकार का होता है, आहार दान औषधि दान और अभय दान तथा ज्ञान दान । यह दान पात्रों को भक्ति पूर्वक दिया जाता है और दीन दुखी जीवों को करुणा बुद्धि से दिया जाता है ।

९—उत्तम आर्चिचय—अतरंग तथा बाह्य के २४ तथा शरीरादिक

में ममत्व भाव न रहने को आर्क्चय कहते हैं ।
 “अपने ज्ञान दर्शन मय स्वभाव बिना अय विचित्
 मात्र भी हमारा नहीं है, मैं किसी अय द्रव्य का नहीं
 हूँ मेरा कोई अय द्रव्य नहीं है” ऐसे अनुभव को
 आर्क्चय कहते हैं । आर्क्चय परम बीजरागतापन
 को ही कहते हैं । आर्क्चय धम मुख्यतया साधुजना
 के ही होता है । महम्य भी एसादा इस धम का
 पालन करता है ।

१०—उत्तम ब्रह्मचय—श्री समाग के त्याग तथा परमब्रह्म आत्मा
 म ही रमण करने को उत्तम ब्रह्मचय कहते हैं ।
 ब्रह्मचय व बिना समस्त अन, तप, जप आदि
 निष्कल है ।

यह दस लक्षण धम कोई परवस्तु नहीं है । आत्मा का निज
 स्वभाव है । क्रोधादिव कर्मजनित उपाधियों के दूर हान पर
 स्वयमेव ही इन दसलक्षण रूप आत्मा का निज स्वभाव प्रकट
 हो जाता है । यह दसलक्षण धम समस्त ब्रह्म गन्तु आदि
 आत्मा का ही सत्य परिणामन है इसका लाभ सम्यक् दर्शन
 सम्यक् ज्ञान से ही होता है यह भी समाग का प्रथम अंग है
 इस धम का पालन पूजनया किया करते हैं । इसका
 पालन अपनी योग्यतानुसार यथाशक्ति करना
 चाहिये ।

बारह भावगण

बार बार विचार करने का अनुदेश

से छूट कर योग का उपाय करना ही जीव का परम वस्तु है निरन्तर ऐसा चिन्तन करने का नाम समार भावना है ।

४—एकत्व भावना—अपने गुणगुण वम के फल का यह जीव प्राप्त अकेला ही भावना है । पुत्र, स्त्री आदि काइ भी दुख में साथी नही, ये सब अपने ही स्वाध के संगे हैं । आत्मा एक अकेला है । इस ससार में इस जीव का वम के अतिरिक्त और कोई हितु नही । निरन्तर इस प्रकार चिन्तन करना एकत्व भावना है ।

५—अयत्न भावना—जसा विचार करना कि यद्यपि इन शरीर में मेरा सम्बन्ध अनादि ज्ञान में चला आ रहा है तथापि ये सबया भिन्न है मैं इससे भिन्न हूँ । नीर क्षीरवत् मेरा इसका सम्बन्ध है । जब यह शरीर ही मेरा नही है तो फिर स्त्री पुत्र धन-धान्य आदि सब अज्ञान अचतन पदार्थ मर कम हो सकते हैं । वे सब पर हैं । इस प्रकार मरल पर पदार्थों को अपने से भिन्न चिन्तन करना अपने अनन्त ज्ञान दानमय गुण चिदानन्द रूप आत्मा की प्राप्ति की भावना करना अयत्न भावना है ।

६—अगुण भावना—ऐसा विचारना कि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और घिनावना है । मांस, लोह, हाड, चाम आदिक अपवित्र वस्तुओं का बना हुआ है । इसके सम्बन्ध से दूसरे अनेक पवित्र और सुगन्धित पदार्थ भी बड़े अपवित्र और घिनावने हो जाते हैं, इस

कारण यह शरीर भ्रमत्व करने योग्य नहीं है। केवल विचार मात्र से भावना नहीं होगी। शरीर का अशुचि विचार करने से यदि परिणामों में बुराग्य भाव प्रगट होता है तो भावना सत्याय बही जाती है अथवा नहीं। बुराग्य की दृढ़ता के लिये बार बार ऐसा चिन्तन करना अशुचि भावना है।

७—आस्रव भावना—यह विचारना कि कर्मों के आस्रव के कारण ही य जीव चतुर्गति रूप ससार में परिभ्रमण करता है नाश प्रकार के दुःख भोगता है। आस्रव से बंध बंध जाता है। जो ससार का मूल कारण है। आस्रव दुःखदाई है ऐसा ज्ञान आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, अपाय और योग उनका विचार करके उनमें बचन के उपाय करने का चिन्तन करना और अपने परम शीतराग भाव में लहीन होना आस्रव भावना है।

८—सवर भावना—कर्मों के आस्रव का रोक्ने का नाम सवर है। सवर के कारण पञ्चमहाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति, दश लक्षण धर्म वारह भावना, बाईस परीपह पाँच प्रकार का चारित्र्य इनके स्वरूप का बार बार चिन्तन करना सवर भावना है। जो जीव पाँचों इन्द्रिया तथा मन को बश में कर विषय वपाया से पराङ्मुख हो, राग द्वेषादि रहित अपना ज्ञान स्वभाव आत्मा में प्रवर्तित करता है उसके सवर भावना होती है।

६—निजरा भावना—पूव सचित्त बर्मों के उदय में आवर खिर जाने को निजरा कहते हैं। पचमहायन पाच-समिति, पच इन्द्रिय विजय तथा वारह प्रवार का तप इत्यादिक कम निजरा के कारणों पर बार बार विचार करना और समभाव रूप से सुख में लीन होकर बार बार अपने स्वरूप की उज्ज्वलता का स्मरण करना निजरा भावना है।

१०—लोक भावना—ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक, पाताल लोक इन तीन लोकों के स्वरूप का बार बार चिंतन करना लोक भावना है। लोक भावना से ससार परिभ्रमण की दशा मालूम होती है और ससार परिभ्रमण से छूट मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा होती है।

११—बोधि दुलभ भावना—मनुष्य जन्म पाना बड़ा कठिन और दुलभ है मनुष्य जन्म पाकर इसको विषय भोगों में लो दना और ग्राम गांधन न करना महामूर्खता है, ऐसे अमूल्य मनुष्य जन्म को पाकर यथाथ ज्ञान की प्राप्ति करना चाहिए। यथाथ ज्ञान दुलभ है ऐसा दुर्लभ यथाथ ज्ञान महान् तपस्विना तथा मुनियोंने अपनी आत्मा में ही साधन किया है। कहा है—

‘ धन वन कचन राज सुख, सब सुखम कर जान ।
दुलभ हैं ससार में, एक यथार्थ जान ॥

इस प्रकार यथाथ ज्ञान की दुर्लभता का बार-बार चिंतन करना बोधि दुलभ भावना है।

१२—धर्म भावना—धर्म के स्वरूप का चिंतन करना। धर्म ही लोक से सुखा को देने वाला है और धर्म

दुःख से छुटा कर मोक्ष के सुख को देने व
 है ऐसा विचार बार-बार करना, दान स
 धर्म तथा ग्लान्य धर्म का चिन्तन करना
 भावना है। पंच महाव्रत के धारी तथा स
 और विषय भागा से विरक्त मुनिराज वराह
 की प्राप्ति तथा हृदय के हेतु "वराम्य की मा
 इन बारह भावनाओं का चिन्तन बार-
 किया करते हैं। इनके चिन्तन में समता व
 सुख प्रकाशमान होता है जैसे हवा के स
 से अग्नि प्रज्वलित होती है। यह भाव
 परमाय माग के दिग्याने वाली हैं, तत्त्वों
 निणय कराने वाली हैं। सम्यक् को उपज
 वाली हैं, अशुभ ध्यान को नष्ट करने वाली
 स्वायलम्बन का पाठ पढ़ाने वाली हैं। स
 और निजरा का मुख्य और प्रबल कारण
 मन की शुद्धि तथा पवित्रता के हेतु इन का
 भावनाओं का भली भाँति समझना और
 पर चलना आवश्यक है।

परीषह जय

मुनिराज कर्मों की निजरा और काय क्लेश करने के लि
 जो परीषह अर्थात् पीड़ा स्वयं बिना किसी प्रकार के राग व
 और कृत्यता रहित समता भाव पूर्वक सहन करते हैं, इस
 परीषह जय कहते हैं। परीषह पाठ्य है:—

दुःख, तृषा, शीत, सप्ल, दश मशक, नग्न, अरति, स्त्री,
 धर्या आसन, गय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण
 स्पश, मल, सत्कार, पुरस्कार, प्रज्ञा, अनान, अदक्षन। इनका

बहुन यहाँ सक्षप से किया जाता है ।

१—सुधा परीपह जय—भूष की बाधा होने पर उसके वग न होकर दुःख को समता भाव के साथ सहन कर लेने का कहते हैं ।

२—तृषापरीपह जय—प्यास की तीव्र वेदना होने पर उससे थक बिना न हाकर उसे समता भाव पूर्वक सह लेना ।

३—शीतपरीपह जय—शीत अर्थात् जाड के कष्ट को समता भाव पूर्वक सहन करना ।

४—उष्णपरीपह जय—उष्णता अर्थात् गर्मी के मन्ताप को समता भाव पूर्वक सहन करना ।

५—गमशक परीपह जय—डास मच्छर त्रिच्छू कानखजूरे इत्यादि जीवों के काटने की वेदना का समता भाव पूर्वक सहन करना ।

६—नग्नपरीपह जय—किसी प्रकार के भी वस्त्रादिक धारण न कर नग्न रहने को और नग्न रहते हुये भी निर्विकार बालक वत् लज्जा ग्लानि और मन से, वचन से, काय से किसी प्रकार के विकार का न हान देने को कहते हैं ।

७—धरतिपरीपह जय—समार क इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष न कर समता भाव धारण करना ।

८—स्त्री-परीपह जय—विभी स्त्री का देखकर या ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने के लिये स्त्रियां द्वारा अनेक उपद्रव किये जाने पर भी चित्त में किसी प्रकार का भी विकार भाव नहीं लाना ।

९—चर्यापरीपह जय—किसी प्रकार की सवारी की इच्छा न रखते हुये, माग के खेद अर्थात् कष्ट को न गिनते हुये,

बिना रिमी खीच का बाधा पहुँचाये परम मोहिया
भाव पूरक मृच्छी का गोपना हुए गमन करता ।

१०—आशापरीपट जय—जै तब तब हो आशा स बैठ छूने
का कष्ट गमना पूरक सहन करता ।

११—अव्यापरीपट जय—गुदनी, पयरोमी, बबरीसी काटी से
भरी हुई भूमि पर गमन करके दुग ७ मानना,
गद निम्न न शाना ।

१२—आशापरीपट जय—दुष्ट मनुष्यों द्वारा कुचरा वह जाने
पर तथा आतिथी दिय जाने पर भी किञ्चित्मात्र
भी मोहित ७ होकर उत्तम क्षमा धारण करने को
वर्त है ।

१३—वधपरीपट जय—दुष्ट मनुष्या द्वारा रथ बधनादि का
दिय जाने पर सत्ता भाव धारण करने और ठ
दु का को गति पूरक सहन करने को कहते हैं ।

१४—आशापरीपट जय—रिमी स रिमी प्रार की भ
याता न करता का कहते हैं । मुत्तराज भूत-व्यात
की बाधा हो जात पर अथवा वरीर में राग हो जा
पर भी निजी में भाजन पान औषधि आदि न
मागत ।

१५—अनाभपरीपट जय—अनन्य उपवासों के बाद आहा
आदि के लिये नगर में जाने पर भी यदि विधि पूरक
पुद्ध और प्रामृष आहार निर्दोष ७ मिने ता से
सिन न हो, परिणामा को बलूपित गही होने देने ।

१६—रोगपरीपट जय—शरीर में अनेक रोग होजाने पर, री
जनिष्ठ पीड़ा का गमना भाव पूरक सहन करते अप

भाप रोग दूर करने का उपाय न करना ।

- १७—वृणस्यशपरीषह जय—शरीर में शूल, काटा, ककर, पीस आदि के चमकाने पर दुखी न होने और भाप उसके निबालने का उपाय न करने को कहते हैं ।
- १८—मलपरीषह जय—शरीर में पसीना आजाने अथवा धूल, मिट्टी लग जान के कारण शरीर के महामसीन हो जाने पर स्नान आदि न करके चित्त निमल रखने को कहते हैं ।
- १९—सत्कार शूरस्कारपरीषह जय—किसी के आदर सम्भार अथवा विनय प्रणाम आदि न करना पर तथा किसी के द्वारा तिरस्कार किये जाने पर हृष्य विपाद न करने समता भाव धारण करने को कहते हैं ।
- २०—प्रज्ञापरीषह जय—अधिक विद्वान् अथवा चरित्रवान् हो जान पर भी किसी प्रकार का भी मान या घमण्ड नहीं करने को कहते हैं ।
- २१—अज्ञानपरीषह जय—बहुत दिना तक तपश्चरण करने पर भी अवधिज्ञान प्राप्ति न होने से अपन भाप खद करने का और ऐसी दशा में दूसरो से अपने प्रति अज्ञानी मूढ़ आदि ममभेदी बचा सुनकर दुःखित न होने को कहते हैं ।
- २२—अदशनपरीषह जय—बहुत दिनो तक धोर तपश्चरण करने पर भी किसी प्रकार के फल की प्राप्ति न होने से सम्यक दशन को दूषित न करने को कहते हैं ।
- इन सब परीषहों से शरीर सम्बन्धी या मन सम्बन्धी जो अत्यन्त पीड़ा होती है उसे समता भाव पूर्वक सहन करने से

संवर होता है और पूव वद्ध कर्मों की निजरा होती है । मुनिराज तो इन परीपहा को पूज्यतया जय करते हैं, गृहस्था के लिये भी इनका जय करना परम कर्तव्य है । इन बाईस परीपहा में से जोव व एक समय एक साथ उनीस परीपह उदय में आ सकती हैं वर्यानि शीत उष्ण में से एक काल में शीत या उष्ण एक ही परीपह होगा और गम्या, चर्या, निपद्या इन तीनों में से भी एक काल में एक ही होगी । इस प्रकार एक समय में तीन परीपहों का अभाय हान व कारण उनीस परीपह ही एक समय में एक साथ उदय में आ सकती हैं ।

इन बाईस परीपहा में से प्रज्ञा परीपह और अज्ञान परीपह जानावरणीय कर्म के उदय होने पर हाती है । दशान माहनीय के उदय से अदशान परीपह और अतराय के उदय से अलाभ परीपह होती है । चारित्र्य मोहनीय के उदय से नग्नता, धरति, स्त्री, निपद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार ये सात परीपह होती हैं । गय ग्यारह परीपह क्षुधा, तृप्ता शीत, उष्ण, दश मशक चर्या, शय्या, बध, राग, तृण स्पश और मल व वेदनीय कर्म के उदय होने पर होती है ।

इन बाईस परीपहा का सहन करना परम भव्य का कारण है, परीपहों के सहन करने से चित्त निश्चल हो जाता है, चित्त का निश्चलता से ध्यान की सिद्धि होती है । ध्यान से कर्मों की निजरा होती है । मोक्ष पद की प्राप्ति होती है । इसलिये मोक्षार्थी मुनि के लिये इन बाईस परीपहा का सहन करना आवश्यक है ।

चारित्र्य

आरमम्बक्य में स्थित होना चारित्र्य है, उसके पांच भेद हैं ।

१—नामायिक चारित्र्य—प्राणीमात्र में समता भाव रखना शुभ अशुभ संस्कारों के त्याग रूप समाधि धारण करना।

तथा रागद्वेष का त्याग करना और सुख दुःख में मग्न रहना । यह सामायिक चारित्र्य है ।

२—छोपस्थापना चारित्र्य—उपयुक्त सामायिक चारित्र्य से डिग जाने पर अपने का फिर से गुद आत्मा का अनुभव में लाना तथा व्रत आदिर में बाधात हा जाने पर प्रायश्चित्त आदि लेकर फिर सावधान हाना छोपस्थापना चारित्र्य है ।

३—परिहारविगुद्धि चारित्र्य—रागद्वेष आदिक विकल्पा को त्याग कर अधिकता के साथ आत्म गुद्धि करना परिहार विगुद्धि चारित्र्य है ।

४—सूक्ष्मसापराय चारित्र्य—अपनी आत्मा को कषाय से रहित करते करते सूक्ष्म लोभ कषाय नाम मात्र को रह जावे उसको सूक्ष्म सापराय कहत हैं । उस नाम-मात्र सूक्ष्म लोभ का भी दूर करन के लिये प्रयत्न करना सूक्ष्म सापराय चारित्र्य है ।

५—यथास्यात चारित्र्य—पूण कीतराग चारित्र्य । कषाय रहित जसा निष्कम्प आत्मा का शुद्ध स्वभाव है वना हाकिर उसमें मग्न होना यथास्यात चारित्र्य है ।

इस प्रकार सबर के मुख्य मुख्य कारणों का वरण किया गया । इससे तापय यह है कि जितना जितना गुद आदि विकल्पा का मनन व अनुभव बढ़ना जाना है उतना उतना ही नवीन कर्मों का मन्दर और पूव बढ़ कर्मों का क्षय होना चला जाता है । इस प्रकार जो नानो आत्मा सबर के कारणों को विचार कर अपने की सब विकल्प रहित गुद भाव पूवक निज शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में लीन रखता है, और रागद्वेष नही करता है उसके सबर होना है ।

दाहा—“गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परोपहसार ।

चारित धारे सग तज, मो मुनि सवर धार ॥

(जयचन्द)

निजरा तत्व

आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का थोड़ा थोड़ा बरके जुदा होना निजरा है । जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जा पानी भर गया उसका थोड़ा थोड़ा बरके बाहर निकाल दिया जावे वैसे ही आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों को धीरे धीरे तपश्चरण द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है । आत्मा के जिन परिणाम से पुद्गल कम फल देकर नष्ट हो जाते हैं वह भाव निजरा है । समय पाकर तपश्चरण द्वारा कम रूप पुद्गलों का आत्मा से भूट जाना द्रव्य निजरा है ।

निजरा दो प्रकार की होती है—सविपाक निजरा और अविपाक निजरा ।

सविपाकनिजरा—परत दक्षर अपन समय पर कम का आत्मा से जुदा होना सविपाक निजरा है यह निजरा तो सब ही ससारी प्राणिया के होती है ।

अविपाक निजरा—स्थिति पूरा होने से पहिले ही तपश्चरण द्वारा कर्मों का नष्ट कर देना अविपाक निजरा है । इसका मुख्य कारण आत्मा का शुद्ध बीजराग भाव है यह भाव शुद्ध आत्मीय ध्यान से प्राप्त होता है । इस निजरा के लिये बारह प्रकार तपका अभ्यास आवश्यक है उममे मुख्य तप ध्यान है ।

बारह तप

१—ग्रनशन—गाद्य स्वाद्य, नेहा, पय इन चार प्रकार के आहार का त्याग कर दिन रात धम ध्यान में सम व्यतीत करना ।

२—प्रवर्गोदय—पूरा भरपेट भोजन न करके यथा सम्भव भूख में कम भोजन करना ।

३—वृत्ति परिमत्स्यान—मिठा के लिये जाते समय इस प्रकार की कोई बड़ी प्रतिज्ञा करनी कि अमुक प्रकार का आहार मिलेगा, अमुक दिना में अमुक मौद-ले में मिलेगा, अथवा अमुक गीति में मिलेगा तो खूँगा, अथवा नहीं । यदि याग्य भिन्ना विधि न बन तो वापस वन में जाकर समना भाव के साथ उपवास आदि करना । इस तप के करने में आना, तृप्णा का नाश होता है ।

४—रस परिहारा—दूध, दही, घी, मीठा सरस, तल इन छह रसों में से एक या अधिक का त्याग कर देना इन्द्रिय दमन, आत्म्य, परिहार तथा स्वाध्याय में मान-द प्राप्ति के अथ यह तप जरूरी है ।

५—विविक्त गम्यागन—जाया की रक्षा के प्रामुख्य क्षत्र में ब्रह्मचर्य पालन करना तथा स्वाध्याय, ध्यानाध्ययन आदिक क्रियाओं का निर्विघ्नता पूर्वक साधन करने के लिये पवन, गुफा, यमिना, स्मशान भूमि वन मण्डिर आदि एतन्त म्याना में मोने बठा का नाम विविक्त गम्यागन है ।

६—कायिकता—शरीर का सुस्तिरापना मिटाने के लिए निज स्वाना में बैठकर या गड्ढे हाकर ध्यान लगाना—जैसे कभी धूप में आतापन याग धारण करना ।

७—प्रायश्चित्त—अपने व्रता में कोई अतिचार होने पर उसका यथाचित दण्ड लेकर अपन को गुद करना ।

८—विनय—सम्यक् दान, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य तथा

गम्यन् तप इत चारो वा और इनके धारण करने
वाता वा आदर मतार करना ।

६—यत्प्राप्तय—पूज पुण्या की भक्ति पूर्वक सेवा चारो
तथा टहन करना ।

१०—प्राध्याय—पाखा वा पढ़ना, विचारना, मनन करना,
रहन्य करना और धर्मोपदेश देना ।

११—धुमन—नगर में ससार में, इन्द्रिय नागों में तथा मन
पर पत्थरों में निरोप ममत्त वा त्यागना ।

१२—ध्यान—गम्यन् विनाशों का निरोध करने धर्म में या
आत्म चिन्तन में लगाय होना वा नाम ध्यान है ।

इन बारह तपा ता आराधन तथा पालन करते हुए जितन
अश भीतराग भाव होंगे उनसे धन कर्माया क्षय होगा । धीनराग
भावा की प्रवृत्ति में कभी कभी अश जन्म जन्मांतरों के बाध
हुए पाप कम क्षणमात्र में क्षय हो जाते हैं । इसलिये धुम व
अधुम कर्मों से रागद्वेष मत करा, समभाव रखो । जब कम
अपना फल देते ह उस समय यदि उम पत्र को समताभाव पूर्वक
भाग लिया जाता है तो व कम क्षय हो जाते हैं और नवीन कर्मों
ता बाध नहीं होगा यदि होगा तो बहुत कम । यदि कर्मों का फल
भोगत समय हय विपाद होगा है या रागद्वेष रूप परिणाम होते
है तो कर्मों का नवीन बाध भी बहुत होगा है । अत मन और
इन्द्रिय का ध्यान तपश्चरण आदि द्वारा जीतकर जो अपने
ज्ञान स्वभाव में लाते होते है उपा मनुष्य-जन्म पाना सफल
होता है उही व कर्मों की निजरा अधिव होती है और उन्ही
को परम अतीन्द्रिय अनन्त अविनाशी सुख की प्राप्ति हाती है ।

दाहा—पूरव बाँव करम ज, क्षर तपा बन जाय ।

सा निजरा कहाय है धार ते शिव जाय ॥

मोक्ष तत्त्व

मुक्ति या माप्न शब्द का अर्थ छुटकारा होना है। अतः आत्मा के समस्त कम बंधनों में छूट जाने का माप्न कहते हैं। माप्न का दूसरा नाम सिद्धि भी है। सिद्धि शब्द का अर्थ प्राप्ति होना है। जैसे धातु के गलाने तपाने आदि से उसमें सब मल आदि दूर होकर शुद्ध सोना प्राप्त हो जाता है वैसे ही आत्मा के गुणों को नष्ट करके बाल दाया का दूर करके शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को सिद्धि या मोक्ष कहते हैं। कमल से छुटकारा पाये बिना आत्मा शुद्ध नहीं होगा अतः मुक्ति और सिद्धि ये दोनों एक ही अवस्था के दो नाम हैं जो दो बातों का सूचन करते हैं। मुक्ति नाम कम बंधन से छुटकारे को बतलाता है और सिद्धि नाम उस छुटकारे के होने से शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को बतलाता है। अतः जनधर्म में न तो आत्मा के अभाव का ही मोक्ष कहा जाता है जसा बौद्ध लोग मानते हैं और न आत्मा के गुणों के विनाश को ही मोक्ष कहा जाता है जसा कि वैशेषिक दर्शन मानता है। जनधर्म में आत्मा एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो जाना और दृष्टा है किन्तु अनादि काल से कम बंधन से बंधा हुआ होने के कारण अपने किय हुए कर्मों का फल भोगता रहता है। जब वह उस कम बंधन का क्षय कर देता है तो मुक्त कहलाने लगता है।

मुक्त अवस्था में आत्मा के अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान अनन्त सुख, अनन्त योग, मूर्धमत्त्व अगुरुनष्टत्व, अवगाहनत्व और अश्रया-बाधत्वय स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते हैं। जैसे सोने में सब मल के निकल जाने पर उसके स्वाभाविक गुण पीतता आदि ज्याह्व चमकदार और पीला होना है वैसे ही आत्मा में सब कम के निकल जाने से आत्मा के स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते हैं। मुक्त होने पर वह जीव ऊपर को जाता है। जीव का स्वभाव

ऊपर का जाने का है टीक जैसा कि अग्नि की लपटें स्वभावतः ऊपर का ही जाती हैं। घा अग्नो उक्त अभ्यास के कारण ही मुक्त जीव ऊपर को जाता है और धार के अभ्यास में पहुँच कर स्थिर हो जाता है। चूँकि वहाँ में आये धर्म द्रव्य का प्रभाव होता है इसलिये वहाँ ही स्थिर हो जाता है फिर वहाँ से सोच कर वापस अज्ञान में नहीं आता।

मुक्त अवस्था में शरीर रहित केवल शुद्ध आत्मा मात्र रहता है। उसका आकार उम्रो शरीर के समान होता है जिनसे आत्मा ने मुक्ति लाभ किया है जन्म मरण में गड़े होने से शरीर की छाया पड़ जाती है वैसे ही शरीर का आकृति मात्र आत्मा मुक्त अवस्था में होता है जो अमृत होने का कारण दिखाई नहीं देता है।

मुक्त हो जाना का बाद यह आत्मा जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, दुःख, भय आदि सब दोषों में रहित हो जाता है, क्योंकि इन बातों का सम्बन्ध होता है शरीर में, और वहाँ शरीर है ही नहीं तथा मुक्तपना आत्मा की ही शुद्ध अवस्था का नामांतर है। अतः जब तक आत्मा शुद्ध है, तब तक वहाँ से क्यून नहीं हो सकता और पुनः अशुद्ध होने का कोई कारण वहाँ मौजूद नहीं रहता अतः वहाँ से कभी नहीं गिरता, सदा निराकुलता रूप आत्म-सुख में मग्न रहता है।

प्रश्नावली

- १—सर्वर किसे कहते हैं ? सर्वर के भेद बताइये।
- २—सर्वर तत्त्व के मुख्य कारण बताइये।
- ३—व्रत किसे कहते हैं ? व्रत कितने हैं ? और तीन चीजें हैं।
- ४—समिति किसे कहते हैं ? समिति कितनी होती है उनके नाम बताइये।
- ५—गुप्ति कितनी होती है ? उनके नाम बताइये।

—दालमल धम के मद बताइये और उनम स प्रत्यक्ष का स्वल्प समझा कर घपन शब्दों में बताइये ।

—बारह भावनाओं ने नाम बताइये । नीच निम्नी भावनाओं के संगण बनाइय—

अपन्व भावना, समार भावना, बोधि दुःख भावना, लोक बना और धम भावना ।

—(क) परापह से आप क्या समझते हैं ? परापह किन्तु हैं ? और उनकी कौन महन करते हैं और क्या ?

(ख) नीच निम्नी परीपहा का स्वरूप बनाइय—

आकाय परीपह, याचना परीपह, अनाम परीपह, सकार निरस्त्रा परीपह, अर्थापरिपह, अनपरीपह ।

(ग) नीचे लिख भावनाओं में कौन सी परापह कहेंगे ?

१—आदिनाथ स्वामी का आहार के विषे जाने पर भा आहार न मिला छ महीन लक्ष्मणदाय रहा ।

२—आनन्द स्वामी जा वन में ध्यान में थे ता मिह ने उनक गरीर को काट दिया ।

३—राजा श्रिणव न यशोधर लहे शले में मरा हुआ सप डाग दिया, अनपह चिरटियाँ उनक गरीर पर चट गईं, बड़े बड़ा कष्ट दिया ।

४—मनलुमा मुनि का शिर तो गया बड़ी पीड़ा हुई । बछ के मिह ने चट्टानों द्वारा की इच्छा प्रगट न की ।

५—सूय मित्र मुनि आश्रम में आधन के उमक घर गये, बाप के लता से बुरा भला कटा अग्नि ने लिया ।

६—एक मुनि बड़ी धीरे धीरे कहेंगे

गही गिरा है, प्यास के मार गला मूक रह
शरीर पर पगीने के वाग्म्य रत जम गय
श्रोग म कुआ गिर गया है, कष्ट बिना सद
र रह है ।

(घ) एक समय म अधिक स अधिक विजनी परोप
सजनी हैं, कौन तीन भी ?

(ग) इन पगीपनी म से कौन कौसी, बिग निम कर्म
दय मे हानी है ?

६—चारित्र्य किम कथा है ? चारित्र्य क भेद बताइये और उ
म प्रत्यय का स्वरूप अपना पाठ्य म समझाइय ।

१०—मगर म आमा का क्या लाभ होना है ?

११—निजरा किम कहत है ? निजरा के भेद बताइय ।

१२—निजरा विजान प्रार का हानी है ? उनक नाम बता
और उनका स्वर्ण भी दृष्टा दवर समझाइय ।

१३—निजरा का मुख्य माधन क्या है ?

१४—तप से माध क्या समझते हैं ? तप के मुख्य भेद बताइय ।

१५—अंतरंग क तप कौन मे हैं, और बहिरंग के तप कौन से हैं
उनक नाम बताइये और प्रत्यय का स्वरूप भी अपना म
पाठ्य म समझाकर बताइय ।

१६—मोक्ष तत्व किमे कहते हैं ? द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्ष
क्या अंतर है ?

१७—मुक्त दशा म आत्मा कही विराजमान होता है और कयो
और उन दशा मे जो मुख्य गुण विकसित होत है उनक
नाम बताइय ।

१८—जीव मुक्त परमात्मा किसे कहते हैं ?

१९—अरहन्त अवस्था और सिद्ध अवस्था मे क्या अन्तर है ?

२०—क्या एक मुक्त आत्मा मोक्ष से लौट कर ससार अवस्था मे
आ सकता है ? यदि नहीं तो कयो ?

रत्नत्रय (मुनिधर्म)

किसी भी यात्रा के अन्त लक्ष पहुँचने के लिये किसी न किसी मार्ग की आवश्यकता है। प्रत्येक जीवात्मा का अभीष्ट मोक्ष प्राप्ति है। मनुष्य जन्म में ही ऐसा अवसर प्राप्त होता है और इस अभीष्ट की गिद्धि हो सकती है। दसवीं म वह समय ही नहीं बन पाता जो मार्ग प्राप्ति के लिये आवश्यक है। नरक गति में एक क्षण के लिए भी मार काट से बचना नहीं मिलता है। निर्बन्ध गति में हिताहित का टनाव बिबर ही नहीं होना कि मोक्ष मार्ग पर प्रारब्ध हो नरें। इतलिय चारा गतिपों में मनुष्य-गति हो ऐसा गति है जहाँ पर मोक्ष मार्ग के लिये प्रयत्न किया जा सकता है। मनुष्य जन्म प्राप्त होना सरल कार्य नहीं है। जो लोग इसे विषय भागा में नष्ट कर देते हैं वे धन को धन के रूप में जला डालते हैं और धर्म को पग धोन में नष्ट कर देते हैं। जो लोग मनुष्य जन्म का मायक बनाना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि मोक्ष मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर। उसमें विश्वास करें और उस पर आचरण करें। वह मोक्षमार्ग रत्नत्रय रूप है। वे तीन रत्न हैं—सम्यग्दान, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य। ये तीनों मिलकर ही मार्गमार्ग हैं जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र में प्रतिपादित किया गया है—‘सम्यग्दानान्नानचारित्र्याणि मोक्षमार्गः’ इसी मार्ग का अनुलम्बन करने से प्रत्येक जीवात्मा परमात्मपद को प्राप्त कर सकता है।

इससे पहले भाग में रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दान और सम्यग्ज्ञान का वर्णन विस्तृत रूप से किया जा चुका है। सम्यक्चारित्र्य के सम्बन्ध में भी ‘आयक धर्म स्वरूप’ शीर्षक में

प्रकाश टाला गया है ।

जब एक थावक श्रावण धमका ग्याह प्रतिमा रूप पावन करत हुए अपने म हूँ प्रकार से मुनिपद धारण करन का योग्यना और शक्ति देना है तो वह आचार्य महाराज की शरण में जाकर परम दिगम्बर मुनिपद की दीक्षा धारण करता है और सबन चारित्र्य अर्थात् १३ प्रकार के मुनि के चारित्र्य को अपने आत्म व्यास के लिये बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ पालन करता है ।

सप्तसारी पाणी कपायो के बसीभूत होकर नित्यप्रति अपने दैनिक कार्यों की सिद्धि के लिये पंच पाप हिंसा, क्रोध, चोरी, कुशील और परिग्रह करना रहता है । इस ही पांच पापों के पूरा रूप से त्याग माधु के होना है, इस पांच पापों के पूरा त्याग का नाम ही पंच महाव्रत है । अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचोय महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत परिग्रह त्याग महाव्रत । इन ही महाव्रतों की दृढ़ता के लिये पंचसमिति और तीनगुप्ति का पालन किया जाना है । इस प्रकार पंचमहाव्रत, पंचसमिति और तीनगुप्ति का मिनाकर तेरह प्रकार का चारित्र्य मुनि का कहा गया है । इनमें पंच महाव्रत मुख्य हैं । यद्यपि महाव्रतों की संख्या पांच बनाई गई है परन्तु वास्तव में देखा जावे तो एक अहिंसा महाव्रत में ही पाँचों चार सत्य सन्ध्यावन, अचोय महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत सम्भित हैं । भूठ बोलन से, चोरी करन से, कुशील भाव से तथा परिग्रह की तपस्या से आत्म गुणा का घात होता है, इसलिये वे सब हिंसा के ही भेद हैं । जहाँ हिंसा का अवधान पूरा त्याग होता है वहाँ भूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इस चारों पापों का भी त्याग हो जाता है ।

पञ्च महाव्रत

अहिंसा महाव्रत—मान् किसी प्रकार की भी हिंसा किसी दंगा में भी नहीं करते न कोई ऐसा कार्य करते हैं न ऐसा गद्द ही अपने मुख से बोलते हैं जिनसे आता या श्रम किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँच और न कभी किसी जीव का अहित विचारते हैं। जीवन निर्वाह के लिए किसी भी प्रकार का व्यवसाय नहीं करते। साधु आत्मोन्नति के लिए पाय नगर ग्राम आदि वस्ती में बाहर रहते हैं। गरीब को जीवित रखने के लिए भिक्षा वस्ति स्वीकार करते हैं। मोजन के नियम दिन में एक बार ग्राम या नगर में आते हैं और भिक्षा द्वारा मासिक भोजन प्राप्त करके लौट जाते हैं। माग में पृथ्वी का देखते हुए शोधते हुए चलते हैं, ऐसा न हा कि प्रमाद से कहीं कोई जीव उनके पाँव के नीचे दबकर मर जाय, कष्ट पावे। सम्भाल कर पुस्तक कमण्डलु पीछी आदि उपकरण जीवजन्तु गुर्रय स्थान में रखते हैं। परम दयानु प्राणीमात्र के हितपी परम तपस्वी उत्तम श्रमा के धारक होते हैं। द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा के त्यागी होते हैं।

त्य महाव्रत—मुनिराज सत्यव्रत का पूरण तथा पालन करते हैं। सासारिक कार्यों—जिनमें व्यस्त हान से गृहस्थ प्राय किमा न किसी अश में असत्य बालता है। या उसका व्यवहार असत्य होता है—उन समस्त

सासारिक बायों एवं तत्सम्बन्धी मोह त्याग देने से साधु लौकिक बाय सम्बन्धी ममस्त प्रकार के असत्या से अपनी पूर्णतया रक्षा करते हैं। मुनिराज साम्प्रभाव में धारक होते हैं। वे क्रोध के आवेश में लाभ के वशीभूत होकर, शोकग्रस्त या हास्य में भी कभी असत्य वचन नहीं कहते हैं। वास्तव में काम, क्रोध, लाभ, हास्य, भय आदि छुद्र वस्तियाँ उनकी सब नष्ट हो जाती हैं, उनके वचन मदक हितमित्र रूप होने हैं उनके वचन परम हितकारी मृदु एवं सत्य होते हैं।

अचौथ महाव्रत—मुनिराज मन, वचन बाय से पूर्ण रूप से मवथा चारी के त्यागी होते हैं। बिना दिये हुये किसी की काई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते। जल मिट्टी तथा जंगल की पत्ती भी बिना दो हुई नहीं लते हैं। अचौथ महाव्रत का ध्यान रखते हुये मुनिराज किसी ऐसे घर या स्थान में नहीं ठहरते जहाँ काई सामान बगैरह रखा हो। साधु महाराज किसी व्यक्ति से किसी वस्तु की याचना नहीं करते, वे किसी गृहस्थी को ऐसा उपदेश नहीं देते जिससे उसकी प्रवृत्ति चौप आदि बाय में लग य। जिसके करने से अय व्यक्तियों के धन का किसी प्रकार से अपहरण हो। किसी गृहस्थ के वचन, व्यवहार या आवृत्ति द्वारा यदि मुनिराज को यह भास जाव कि वह उह काई वस्तु भक्ति और श्रद्धा पूर्वक नहीं देना चाहता है और उस वस्तु के अपने

से पृथक् करन में उस दुःख होता है तो वे उस वस्तु को कदापि ग्रहण नहीं करते । साधु अपनी भिक्षा की आसक्त विधि में कोई कमी या अधिकता नहीं होने देते । वे किसीसे किसी प्रकार का सम्वाद नहीं करते । पर्वत की गुफा वन वक्षों के कोटरों में निवास करते हैं । दूसरों के छोड़े हुये स्थान में ठहरते हैं, जहाँ घाप छदरे हो वहाँ यदि कोई घोर ठहरना चाहता उसे राखते नहीं । जहाँ कोई पहने में छदरा हुआ हा तो उसे वहाँ से हटा कर स्वयं नहीं ठहरते । इस प्रकार मन, वचन वायु में भवया पूरण में अच्युत महाव्रत का पालन मुनिराज किया करते हैं ।

ब्रह्मव्रत—मुनिराज मन वचन वायु में सबका मैथुन का त्याग करते हैं । मुनिराज अठारह हजार शील के भदों का पालन करते हुए स्त्री मात्र के त्यागी होते हैं । वे निरन्तर अपने गुह्य विद्वान्द रूप आत्मा का अनुभव किया करते हैं । विकार भाव को उत्पन्न करने वाले सब ही कारणों से सबका पृथक् रहते हैं । स्त्री सम्बन्धी कथा नहीं कहते, स्त्रियों के सुन्दर अंगोपांग की ओर न देखते नहीं । पूर्व में भोग इय भागों को याद नहीं करते, आगामी भागों की इच्छा नहीं रखते । मुनिराज ऐम स्थान में नहीं रहते जहाँ परस्त्री पुरुषों का समागम अधिकता से रहता है । वे ऐसे स्थान से दूर जंगल आदि एवान्त स्थान में जहाँ धर्म ध्यान, स्वाध्याय आदि निर्विघ्नता के साथ हो सक, निवास करना पसन्द करते हैं । कामादीपक

भाजन वभी ग्रहण नहीं करते, शरीर का कोई शृङ्गार आदि वभी नहीं करते, इन्द्रिय दमन के हेतु धार तपश्चरण करते हैं। समय के अनुश्रुति मान जो वन में रहते हैं। इस प्रकार साधु पण रूप से अरुण ग्रहाचय महाव्रत का पालन करते हैं।

परिग्रह त्याग महाव्रत—मुनिराज पूण रूप से अतरंग और बहिरंग व चौबीस प्रकार के परिग्रह के सर्वथा त्यागी होते हैं। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ हास्य, रति, अंगति, शय, भय, जुगुप्सा, स्त्री वद, पुरुष वद, उपुस वद इस प्रकार चौदह प्रकार के अतरंग परिग्रह का त्याग करते हैं। प चाक्षी, सोता क्षेत्र मवात, घन पाय, शशी दाम, कपज, वतन, इन दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का मुनिराज के सर्वथा त्याग होता है। मुनिराज पाँच इन्द्रिया के किसी भी इष्ट अनिष्ट विषया में रागद्वेष रूप प्रवृत्ति नहीं रखते।

पाँच समिति (सावधान रूप प्रवृत्ति)

प्रमादरहिा हाजर सावधानता पूर्वक बतन का नाम समिति है। मुनिराज नीच लिखी पाँच समितियाँ का पालन महाव्रतों की रक्षा तथा दृढता के लिय किया करते हैं —

ईयासमिति—पृथ्वी को चार हाथ प्रमाण भाग देखकर चलता। दिन व समय ही चलना, रात्रि में गमनागमन नहीं करना। मुनिराज दिन के समय माग को शोधते हुए ऐसे भाग से चलते हैं जो मनुष्यों तथा पशुओं के आने जाने से रौदा हुआ हो। चलने हुए स्थान

उपर नहीं भेजते । ऐसी सावधानता से चलते हैं जिससे किसी भी जीव का किसी प्रकार भी कष्ट न पहुँच ।

भाषाममिति—मुनिराज शास्त्रोक्त प्रमाणीक सद्दह रहित, हित, भिन मिष्ट भिन्न वचन बोलते हैं । उनके मुखारविन्द स समार का उपहार करने वाले हर प्रकार की दुःखादयो का नाश करने वाले, बानों का सुखपायी, सब प्रकार का सद्दह दूर करने वाले और मिथ्यात्व रूप रोग को नाश करने वाले अमृत समान वचन ही निकला करते हैं ।

एषणाममिति—मुनिराज दिन में एक बार निर्गोप आहार भिक्षावृत्ति से लेते हैं । ये छपासीस गोप और बस्तीम अन्तराय का टाक कर कुलीन आदर के घर वेदल तप वद्धि के अभिप्राय से नवधा भक्षि पूजक दिया हुआ आहार ग्रहण करते हैं । शरीर का पुष्ट करने का उद्देश्य उनका नहीं होता है । तपस्यः आदि के द्वारा कम बन्धन नष्ट करने तथा आत्मोन्नति करने के हेतु शरीर को जीवित रखना आवश्यक है अतः उसकी मृत्यु से रक्षा करने के लिये भोजन ग्रहण करना पड़ता है ।

आदाननिशेषणममिति—मुनिराज ज्ञान के साधन शास्त्रा तथा कमडलु पीछी आदि धर्म के उपकरणों को अपने ननों से दमकर पीछो से छोड़कर इस प्रकार सावधानता के साथ रखते उठाते हैं कि किसी जीव का किसी भी प्रकार की बाधा न हो ।

व्युत्सगममिति—मुनिराज अपना मत मूल, जीव जन्तु रहित पशुन भूमि पर इस प्रकार [सावधानता के साथ

क्षण करते हैं कि जिससे किसी भी जीव को किसी प्रकार की भी बाधा न होवे ।

इन पाँचों ममिति का पालन मुनि व्रत का मूल है । मुनिराज चारित्र्य की शुद्धि के लिये इनका पालन करते हैं ।

गुप्ति (मन, वचन, काय पर नियन्त्रण)

भले प्रकार मन, वचन, काय की यथेच्छा प्रवृत्ति के रोकने का नाम गुप्ति है । गुप्ति तीन हैं ।

मनोगुप्ति—न्याति, लाभ, मान की वाछा बिना मनोयोग का राखना, मन पर पूरा काबू होना मनोगुप्ति है ।

वचनगुप्ति—न्याति लाभ मान की वाछा के बिना वचन योग का राखना अर्थात् वचन पर पूरा काबू होना, वचन गुप्ति है ।

कायगुप्ति—न्याति, लाभ, मान की वाछा के बिना काय योग का रोकना अर्थात् शरीर पर पूरा काबू रखना काय गुप्ति है ।

गुप्ति ही मुनि पद का मूल है । गुप्ति बिना सम्यक् चारित्र्य नहीं होता और सम्यक् चारित्र्य बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती । इस प्रकार पंचमहाव्रत, पंचममिति और त्रयगुप्ति रूप तैरह प्रकार के चारित्र्य का पालन मुनिराज किया करते हैं । इसके अतिरिक्त मुनिराज पाँचों इन्द्रिया को जीतते हैं । पाँचा इन्द्रियो के विषया मे राग द्वेष नहीं करते । पाँचा इन्द्रियो को जीतना ही पंच इन्द्रिय विजय है ।

मुनिराज अपने छह आवश्यक का भी नित्यप्रति पालन किया करते हैं, वे छह आवश्यक निम्न प्रकार हैं—प्रतिदिन सामायिक करते हैं, नीधशूरोकी स्तुति करते हैं, जिनद्र प्रभुकी वन्दना करते हैं, प्रमाद स लग हुए दोषों का शाधन (प्रतिक्मण) करते हैं, भविष्य मे लग सकने वाले दोषों से बचने के लिये अयोग्य वस्तुओं

का मन, वचन और काय से त्याग (प्रत्याख्यान) करते हैं। लगे हुए दोषों का शोधन करने के लिये अथवा तप की वृद्धि के लिये तथा कर्मों की निजरा के हेतु कायोन्मग्न करते हैं। सड़े होकर दानों भुजाओं को नीच की ओर सटका कर पर के दानों पजा को एक सीध में चार अंगुल के अन्तर से रगड़कर साधु के निश्चल ध्यान में लीन होने को कायात्सम कहत हैं।

इनके अतिरिक्त मुनिराज ने सात विशेष गुण यह और होन हैं।

- (क) वे स्नान नहीं करते। गृहस्थ के घर जब आहार के लिये जाते हैं तो गृहस्थ ही उनका शरीर पाछे देते हैं।
- (ख) वस्त्र धावन नहीं करते। भोजन करने के समय गृहस्थ के घर पर ही मुख गुच्छि कर लेते हैं।
- (ग) पृथ्वी पर, गिला पर या काष्ठ के तख्ते पर सोते हैं।
- (घ) लगे होकर सुकुल श्रावक के घर नवधा भक्ति पूर्वक शास्त्रोक्त विधि अनुसार अल्प आहार करते हैं।
- (ङ) दिन में एक बार भोजन करते हैं।
- (च) नग्न रहते हैं, धर्मोपकरण को छोड़ अन्य विलक्षण मात्र भी परिग्रह अपने पास नहीं रखते।
- (छ) वेगलाच करते हैं।

इस प्रकार एक जनमुनि पञ्च महाव्रत, पञ्चसामनि पञ्च इन्द्रिय विजय, छह दैनिक आवश्यक कर्म और सात विशेष गुण। कुल मिलाकर इन अट्ठाईस मूल गणों का पालन करता है। उसके ऊपर यदि कोई कष्ट आता है तो वह उससे विचलित नहीं होता। भूय व्यास की वृत्ता से पीड़ित होने पर भी किसी के आगे हाथ नहीं पसारता और न मुख पर दोनना के भाव हो जाता है। उसके लिये शत्रु, मित्र महल, स्मरण वचन, वाच, निन्दा, स्तुति सब समान हैं। यदि कोई उसकी पूजा करता है तो उसे भी आशीर्वाद

देना है। और यदि कोई तत्परा से ज्ञान पर प्रहार करता
जिसी भी जिस कामता करता है। उसे १ निमी म राग हा
और न निमी मे द्वय। रागद्वय का आत्मा मे रू निरास प
य लिय तो य साधु का आनरण ही पालना है। मुनि
द्वारा तप का साधन करत है। दानलग्न धर्म का पालन क
है। रत्नत्रय ही आराधना करत है। कभी दूसर मुनि के
तथा कभी भक्त विहार करत है और स्वप्नमात्र म सत्ता
विनाशिर गुण ही दृष्टा रही रत्न, २ धपना समय अधिक
म स्वाध्याय और मा म ध्यान म ही व्यतीत करते हैं।

वास्तव म जा गुरु (मुनि) विचार चलत रिक्त, र
दिन उठते घटते भाजन करत भी ज्ञानाभ्यास मे, धर्म-ध्यान
इच्छा निराप तामी तप म मग और तनलीन रहा करने ५,
ही मुनि गुरु प्रणामा योग्य मा य हैं, पूज्य हैं, वर्य हैं। तच्चे गु
दामा भूपण स भूषित त्रिगम्बर, पृथ्वी के समान अचन, समु
क समान गम्भा वायु के समान निष्पग्निहृ, अग्नि के समान
कम को भस्म करन वान, आकाश के समान निर्लेप जल के
समान स्वच्छ चित्त के धारक एवं मेघ के समान परोपकारी हुमा
करत है। जा गुरु परम ज्ञानी, परम ध्यानी तथा दृढ व्रता
होते हैं, व ही सुगुरु हैं, व ही परम पूज्य तथा वर्य मुनिराज हैं।

इस प्रकार एक जन साधु मुनि व चारित्र्य का निरन्तर
पलनाचार पूवक पालन करता हुआ अपन आत्मा की ओर अग्रसर
होता है। पूव सचिन कम वचन को धीरे धीरे परतु दृढता व
माहस पूवक बाटता एवं नवीन कम वचन से अपनी रक्षा करता
हुआ साधु अपनी आत्मा को दिन प्रतिदिन अधिकाधिक निमल
व शुद्ध करता जाता है। अन्त मे एक ऐसा समय आता है, जब
मन्त जानावरणीय, दानावरणीय, साधु-वि

चारों घातिया कर्मों को नष्ट करके वह अपने शुद्ध स्वरूप का प्राप्त कर लेता है । उस जीव-मुक्त अरहत परमात्मा का ज्ञान सूर्य जैसा सब तरफ समझी भण्ड पटल से आच्छादित व विवृत हो रहा था—एक ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित हो उठता है । उनके ज्ञान प्रकाश में समारंभ समस्त पदार्थ एवं उनके समस्त गुण व पर्याय झलकने लगती हैं । ज्ञान प्रसाद के साथ वह जीव-मुक्त परमात्मा दिव्य अनोखे धनुषम आनन्द में मग्न हो जाता है । इस धनुषम आनन्द समुद्र रस का प्रतिक्षण पान करता हुआ उगम लीन रहता है । ससार के लाभार्थ उस जीव-मुक्त अरहत परमात्मा की दिव्य-बाणों का संचार जाना है जिसने अरण्य से अनेक व्यक्तियों का ज्ञान प्राप्त होता है, एवं व आ-मात्राति की शर अग्रसर होते हैं ।

उपराक्त जीव-मुक्त अवस्था में रहने एवं समारंभ का कल्याण करने के कुछ समय पश्चात् उनके शरीर सम्बन्धी नाम आयु मात्र व वदनीय अघातिया कर्मों का नाश हो जाता है । आयु कम साध हो जान पर उनकी शुद्धात्मा भौतिक शरीर को त्याग कर कम बाधन से सबथा मुक्त हो कर, तार के शिखर पर विराजमान हो जाती है जहाँ वह शुद्ध मिद्ध परमात्मा सदा के लिये धनुषम दिव्य आनन्द में मग्न रहता है एवं उनकी दिव्य ज्ञान ज्योति में समारंभ समस्त पदार्थ अपने अनन्त गुण व पर्याय सहित आलोकित होने रहते हैं । । कम बाधन से सबथा मुक्त हो जाने पर कोई शक्ति ऐसा गप नहीं रहती जो उस परमात्मा को फिर कम बाधन में डाल सके । उनके शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में विकार उत्पन्न कर सके या उसका दिव्य आत्मिक शक्तियों का आच्छादित कर सक । इसलिए वह परमात्मा अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में शाश्वत मग्न एवं विराजमान रहता है ।

इस प्रकार प्रत्येक आत्मा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और

सम्यक् चारित्र्य रूप रत्नत्रय की औषधि के प्रयोग से अपने मोह
ज्वर का दूर कर परमात्मा, जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिष्ठा को प्राप्त
कर सकता है । परमात्म पद विश्व के प्रत्येक प्रयत्नशील सुयोग्य
प्राणी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । यथाथ मे देसा जावे
तो प्रत्येक आत्मा में परमात्मत्व की शक्ति छुपी है और वह
आत्मनिष्ठा आत्मज्ञान तथा आत्मरक्षण आदि के द्वारा
अभिव्यक्त होता है । यह रत्नत्रय का माहात्म्य है ।

प्रश्नावली

- १—साध का तरह प्रकार का चारित्र्य क्या जाना है ?
- २—महाप्रत में आप क्या समझते हैं महावन जितने होते हैं ?
उनका नाम बताइये और उनका स्वरूप अपने शब्दों में समझाओ ?
- ३—यह सिद्ध कीजिये कि अहिंसा महाप्रत में अथवा चार महाप्रत
भी गमित है ?
- ४—समिति किस पद से है ? यह कितनी होती है, इसके नाम
बताइये और प्रत्येक समिति का स्वरूप भी समझाओ ।
- ५—गुप्ति का स्वरूप समझाइये, गुप्ति कितनी होती है, उनके
नाम बताइये और प्रत्येक गुप्ति का स्वरूप भी अपने मूल
शब्दों में बताइये ।
- ६—समिति और गुप्ति के पालन करने से क्या लाभ होता है ?
- ७—मूल गुण क्या होते हैं ? मूल गुण क्यों कहलाते हैं साधु के
मूल गुण कितने होते हैं और क्यों कौन से ?
- ८—साधु के पद आवश्यक कम के नाम बताइये और उनका
स्वरूप समझाइये ।
- ९—एक दिग्गजर जन साधु के चारित्र्य का दिग्गजन अपने सरल
शब्दों में कीजिए ।
- १०—क्या प्रवेला सम्यक् चारित्र्य मोक्ष का साधन हो सकता है ?
- ११—रत्नत्रय का माहात्म्य बताइये ?

जिन-वाणी सुधा

जिन पीज्यो धी पारो,

जिन वानि सुधा सम जान के, नित पी० ॥

वीर मुखारविन्द स प्रगटो, जम जग गन टारी ।

गौनमादि गुर उरघट व्यापी परम सुखि करनारी ॥

सलिल समान कलिल मल गजन बुध मन रजन हारी ।

भजन विभ्रम धूलि प्रभजन मिथ्या जनद निदारी ॥नित०

कल्याणवत्तर उपवन घरिनी, तरना भव जल तारी ।

यध विदारन पनी कनी मुक्ति नसनी मारा ॥नित०

स्वपर स्वरूप प्रकाशन का यह, भानु कला अविहारी ।

मुनि मन-कुमुदिनि मोदन दक्षिमा सम सुख सुमन मुवारी ॥नित०

जाको सेवत बवत निज पद, नगत अविद्या मारी ।

तीन लाकपनि पूत जाका, जान त्रिजग हितकारी ॥नित०

कोटि जीभ सौ महिमा जाकी कहिन सके पविधारी ।

‘दोल’ अल्प मनि कम कहै यह अघम उधारन हारा ॥नित०

प्रश्नावली

(१) इस भजन का कठाग्र सुनाइये ?

(२) इस कविता का भावाथ अपने शब्दा में सुनाइये ?

(३) दूसरे तीसरे और चौथे छंद का शब्दाथ सुनाइये ?

(४) इस कविता में किम्बा माहात्म्य गाया है ?

जेन धर्म की देन



माताजी श्री पी० एम० कुमार स्वामी राजा प्रधान मंत्री मद्रास
(२८ दिसम्बर स. १९४८ को मद्रास में श्री श्वेताम्बर स्थानक
स्वामी जी का फोटो स. ११ उद्घाटन करते समय दिये गये भाषण में)

[अनुवादक — श्री पृथ्वीराज जन M A नास्सी]

इतिहास के उदय काल में ही भारत धार्मिक परम्पराओं का
दश रहा है। अनन्त धार्मिक परम्पराओं के फूलों फलों की भूमि
होने का जो गौरव हम प्राप्त है यह समार के किसी दूसरे देश
को नहीं है। प्राग्भूत से ही यह एक ऐसा प्रकाश पुञ्ज रहा है,
जिसने समय समय पर महात्मा धर्मों के सन्देश वाहकों के द्वारा
विश्व के दूसरे देशों में आध्यात्मिक प्रकाश तथा सांस्कृतिक प्रभा
का प्रसार किया है। उसार में प्राचीन धर्म के ही हैं—जो भारत
की पवित्र भूमि में पैदा हुए। उन धर्मों में प्रसिद्ध जन धर्म भी
है, यह उतना ही प्राचीन है जितना सिद्धि धर्म। यह आज
भी भारतवर्ष में जीवित धर्म के रूप में विद्यमान है। जनधर्म
अति प्राचीन होने का सच्चा अभिमान कर सकता है। भगवान्
शृणुभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक २४ तीर्थङ्करों ने इस
धर्म की प्रतिष्ठा की बढ़ाया। प्रथम तीर्थङ्कर श्री शृणुभदेव का
वर्णन हिंदू पुराणों में भी है, जहाँ उन्हें अति प्राचीनकाल का
बताया गया है।

जनधर्म की अतीत काल में बहुत से राज बलों का संरक्षण
मिला। परिणाम स्वरूप हमारा प्रभाव बहुत बढ़ा, जहाँ ने समस्त

भारत में बहुत से विद्यापीठों की स्थापना की। जहाँ स गान और सम्मृति का प्रचार किया जाना था। यद्यपि उनमें स अनन्य समय व प्रवाह व धिलीन हागये हैं तथापि अभी तक एम चिह्न और लेख मौजूद हैं जे जनता की प्रवृत्तियाँ और जीवन पर छाप डालने वाली जनधर्म की अतीत गौरव गाथा एवं श्रष्टा का प्रमाण हैं। दक्षिण भारत में बहुत से ऐसे स्थान हैं और मंदिर हैं, जे जन धर्म की आध्यात्मिक तथा साम्प्रतिक महानता व सम्बल प्रतीक हैं। जनधर्म की नीति कभी आक्रमणात्मक नहीं रहा, इसीलिये जनसाधारण में इसका प्रचार व विकास सुगमता से हो सका। पूरा रूप से अहिंसा का पालन इसका मूल सिद्धान्त था। जनधर्म न सत्कार की अहिंसा का गन्वेश दिया है। उमी सदा की अहिंसा के अन्तिम मन्दाग ग्राहक स्वर्गीय श्री महात्मा गांधी ने नयीन धर्म तथा स्फूर्ति देकर हम सुनाया है।

जनधर्म ने अहिंसा को सबसे पहला नियम घोषित किया है इसका अर्थ है—मन, वचन काय व निमी भी प्राणी पशु अथवा कीड़े मकोड़े को भी दुःख न पहुँचाना। जनधर्म न जिस सत्कार की शिक्षा दी है उमका कुछ अर्थ हैं—अहिंसा का पालन, असीद्वन अती का आचरण, ज्ञान और सत्सृति का प्रचारार्थ ज्ञान निराधिता तथा निधनों के बन्ध का निवारण तथा अनुचित और अनावश्यक परिग्रह पर रोक थाम। अनान अभिमान तथा अहंकार के निगवरण एवं विनय व आगधन पर जोर दिया गया है। जनधर्म का सबसे उगा मन्त्र पूरा मन्दाग माक्षमाग है जिसे रत्नत्रय कहते हैं। वे हैं सम्यक दान सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र्य। अहिंसा एवं विचार वाली आर कायों में पवित्रता ऐसे सद्गुण हैं जिनका सत्ता राष्ट्रपिता महात्मागांधी भी हम दिया करते थे। उनके हाथों में सद्गुण गच्छिगाली शस्त्र

बन गये । इनके द्वारा उहोने ऐसी आश्चयजनक सफलतायें प्राप्त की, जिन्हें आज तक विश्व न देसा ही न था । क्या यह कहना उचित न होगा कि गांधीवाद जैनधर्म का ही दूसरा रूप है ? जिस हद तक जनधर्म में अहिंसा और सत्यास का पालन किया गया है वह त्याग की एक महान् शिक्षा है । इस गुण की उन व्यक्तियों में बड़ी जम्हरत है जिन्होंने अपना जीवन जनता और देश की सेवा में लगा दिया है ।

सामाजिक एनता की स्थापना में भी जैनधर्म का एक बड़ा हाथ रहा है । हमने द्वारा दी गई शिक्षायें व सन्देश समाज के लिये बड़े हितकर थे । जनधर्म की साधु सस्था यड़े ऊँचे दर्जे की थी । उसने नैतिक तथा सामाजिक नियमों के प्रचार के लिये अनेक निस्वार्थ कार्यकर्त्ता तयार किये । जहाँ तक दर्शन तथा सम्बन्ध है जन एक और अविभक्त रहे हैं, किन्तु साधुओं के कुछ आचार नियमों के आधार पर व दो सम्प्रदायों में बँट गये, दिगम्बर और श्वेताम्बर । उन नियमों में सबसे महत्वपूर्ण भव यह था कि दिगम्बर साधु वस्त्र नहीं रख सकते जब कि श्वेताम्बर रख सकते थे । प्राचीन जनधर्म में जातिपात का कोई स्थान न था । अस्पृश्यता का सन्ध्या अभाव था । जसा कि सभी प्राचीन धर्मों में हुआ है । पता, अकमण्यता और उपेक्षाभाव का कारण जा समाज में भी मनभर हुए । हमारे धर्मों की तरह जनधर्म में अमक सम्प्रदाय है । फिर भी गूबी यह है कि जन किसी भी सम्प्रदाय व क्या न हो सभी उन नैतिक बातों को मानते हैं, जो जनधर्म के मूल सिद्धांत हैं ।

देश के जीवन पर नैतिक व आचार सम्प्रदायों प्रभाव के आर्थिक बलाघों और भाषाभाषा के विकास में भी जनधर्म का अद्भुत दान है । देश के भाषा सम्बन्धी विकास में जनो ने बहुत बड़ा योग दिया है । जनधर्म प्रचार तथा ज्ञान की रक्षा के

निर्मित भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न समय की प्रचलित भाषाओं का उपयोग किया। कुछ भाषाओं का सब प्रथम साहित्यिक रूप देने का श्रेय उन्हीं को है। वज्रह का प्राचीनतम साहित्य जना द्वारा निर्मित है, प्राचीन तामिल साहित्य भी बहुत कुछ जन लेखकों का ही है। तामिल के मुख्य महाकाव्यों में से दो "चिन्तामणि" और 'सीतम्पदिवरम्' जन लेखकों की ही कृतियाँ हैं। प्रसिद्ध 'नलदियर' का मूल भी जन है। यह नगर भी दक्षिण मत्तापुर (मद्रास शहर का एक भाग) एक समय जन साहित्यिक रचनाओं के मुख्य स्रोत के रूप में विख्यात था।

हमारा यह देश जनधर्म के प्रति सदैव ऋणी है क्योंकि इसने हम अत्यन्त समृद्ध सांस्कृतिक वस्तुओं प्रदान की हैं। कलाओं की प्रगति के क्षेत्र में इसकी देन महान् है। अनेक स्तूप, कला पूर्ण विशाकित शिला स्तम्भ और बहुसंख्यक मूर्तियाँ जन कला की महानता के प्रमाण हैं। समूह राज्य के अत्यन्त श्रवण बेलगाला और दक्षिण कर्णाटक के अत्यन्त कारकल में गोमटावर की बेगालकाय मूर्तियाँ विश्व के आश्चर्यों में हैं। इन दोनों स्थानों की हाल की यात्रा ने मेरे हृदय पर यह गहरा प्रभाव डाला है कि मनुष्य का कला सम्बन्धी ज्ञान तब तक अशूरा है जब तक वह इन श्रुत मूर्तियों के दर्शन न कर सके।

(श्रमण से उद्घटन करवरी १९५०)

प्रश्नावली

१—जनधर्म की सबसे बड़ी देन मसार को क्या है ?

२—भारत देश के जीवन पर जनो का नैतिक तथा आचरण सम्बन्धी क्या प्रभाव पड़ा है ?

३—सामाजिक एकता की स्थापना में जनधर्म ने क्या प्रदान किया है ?

४—भारतीय कला तथा भाषा के क्षेत्र में जनधर्म की क्या देन है ?

५—'जनधर्म की देन' इस विषय पर एक छोटा सा निबंध अपनी परिभाषा में लिखिये।

दक्षिण का एक प्राचीन स्थान

कारकल

श्रवणा बलगांव या जजबट्टी की भांति ही कर्णाटक देश का दूसरा प्रसिद्ध जननीय म्हुबट्टी है, यह स्थान होयसल राज्य काल में जना का प्रमुख केंद्र था ।

म्हुबट्टी से १० मील की दूरी पर तारकत नामक तीर्थ है । यह तीर्थ स्थान कारकल नामक नगर में एक मील की दूरी पर स्थित है । यहाँ भी स्थानीय भट्टारकजी की गद्दी और मठ है । लगभग सर्वत्र जन मंदिर, धर्मशाला पाठशाला, बुएँ तालाब, मातस्नम्भ, आदि विभिन्न धर्मायनना में सुतोभिता, एक छाटो की नदी के तट पर दा पवतो के मध्य स्थित यह स्थान अत्यन्त रमणीय है । यहाँ का मानस्नम्भ विष्णु रूप में दर्शनीय है । उत्तर दिशा में चौरासी पवत पर भगवान् ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दनाथ, सुपादवनाथ, चन्द्रप्रभु पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयामनाथ एवं वासुपूज्यनाथ की १० प्रति मनास १०-१० हाथ उत्तुङ्ग खड्गामन प्रतिमाएँ आग दिशाओं में विराजमान हैं । उनका प्रतिरिक्त और भी अनन्क छाटो बड़ी प्रतिमाएँ हैं ।

किंतु कारकल का सबसे बड़ा आकर्षण श्री धाहुवली जी अर्थात् गोम्मट स्वामी की ३६ फीट ऊँची विदालकाय प्रतिमा है, जिसे सन् १४३२ ई० में कारकल के तत्कालीन नरेश वीर पाड्य भरवरस आडेयर ने निर्मित कराया था । यह राजा परम धार्मिक

और जनधर्म का बड़ा बल था। जनान्द्रियो तब इस बात में जनधर्म की मान्यता बनी रही।

यौधेय कारकण को यह बाहुरसि का प्रणिमा श्रवण बलगोल व गोमट स्वामी के उपरान्त निमित्त हा हा जाती उसी महापुरुष का दूसरा प्रसिद्ध प्रणिमा है और उक्त प्रणिमा के धार्मिक भाव सब का धर्म अधिक विनाश है। गुप्त मन्त्रिण ने श्रवण बलगोल की मूर्ति को धार्मिक रमणर उसी की प्रामाण्य बनाने की चेष्टा की है। यद्यपि यह इस कार्य में पूर्णतया सफल नहीं हो पाया है तथापि यह मूर्ति भी अत्यन्त आकर्षक बनाने एवं बला पूर्ण है।

इसके बाद दक्षिण के शोक म्याना में श्री बाहुरसि स्वामी की छत्ता बड़ी आगिनन मूर्तियाँ स्थापित हुई, जिन्हे कारण उक्त महापुरुष का पूजा का विषय प्रचलन हुआ। कारकण व केवल एक प्रसिद्ध जननीय है वरन् मध्यकाल का एक प्रमुख जन सामुदायिक केन्द्र भी रहा है।

प्रश्नावली

१—कारकण कहाँ है और क्या प्रसिद्ध है ?

२—इस तीर्थ का निमाण कब और किन्हे किया ?



गुजरत का प्रसिद्ध स्थान

शत्रुञ्जय

— —

गुजरात काटियावाड़ में पालिताणा एक छोटा सा नित्तु गुदर नगर है और रेलवे स्टेशन भी है। इसका नाम की दूरी पर एक पर्वत पर प्रसिद्ध जगतीय शत्रुञ्जय है। अनेक महात्माओं ने यमरूपी शत्रुञ्जय का जोनर इस स्थान पर मोक्ष व सद्गति प्राप्त की थी। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम शत्रुञ्जय प्रसिद्ध हुआ। इसका दूसरा नाम पुण्डरीक भी है। आदिदेव भगवान् ऋषभदेव के प्रधान गणेश पुण्डरीक ने इसी स्थान से निर्वाण लाभ किया था, ऐसा माना जाता है। जन श्रद्धा के अनुसार शुद्धिष्ठ भीम, अजु न, नकुल और सहदेव इन सप्तप्रसिद्ध पांचों पांडव भाइयों ने इसी पर्वत पर दुष्ट र तपश्चरण करके मुक्ति लाभ किया था। अनेक पुरुषों ने यहाँ तपस्या की।

गुजरात का जगती धर्मानुयायी सोलहवीं नरेशों के समय इस तीर्थ का विष्णु उत्पन्न हुआ विशपवर महाराज कुमारपाल सोलहवीं ने अपार द्रव्य व्यय करके यहाँ के प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार तथा अनेक नवीन मन्दिरों का निर्माण करवाया था। यह राजा कुमारपाल अपने समय के भारतवर्ष के सर्वशक्तिमान् एवं प्रतापी नरेश थे। कनिवाल सबका उपाधिधारी महान् जन विद्वान् आचार्य हेमचन्द्र उनका गुरु थे।

इसके उपरान्त भी उक्त शत्रुक्षय तीर्थ पर घनका जन मन्दिरों का निर्माण हुआ और आज उस एक ही स्थान में जना के सुन्दर सुरम्य लगभग चार हजार जन मन्दिर हैं। इसी के कारण यह नगर 'मन्दिरों का नगर' (A city of temples) कहलाता है। ऐमा भय उदाहरण भारतवर्ष जैसे घन प्राण देश में भी भय नहीं मिलता। विदेशी दगको न भी इस स्थान को देखकर आश्चर्य प्रकट किया और मन्दिरों एवं मूर्तियों की बहुलता, सुन्दरता एवं कला की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

इन मन्दिरों में कुछ तो ११ वीं शताब्दी में निर्मित हुए थे। शेष अधिकतर १५ वीं शताब्दी के उपरान्त के हैं। यह जन तीर्थ इस बात का पश्चिन्न देता है कि किसी समय जन घन के मनुष्याधीन केवल सख्या शक्ति और घन वभव की दृष्टि से भारतवर्ष में प्रमुख थे वरन् अपने घमघाननों के निर्माण में विपुल द्रव्य व्यय करने में भी मुक्तहस्त थे। शत्रुक्षय की गणना विनाप कर श्वेताम्बर सम्प्रदाय की दृष्टि में जनघन के प्रधान घन तीर्थों में है।

प्रश्नावली

- १—शत्रुक्षय तीर्थ कहाँ है ? इसका नाम शत्रुक्षय क्या पडा ?
- २—शत्रुक्षय मन्दिरों का नगर (city of temples) क्या कहलाता है ?
- ३—शत्रुक्षय तीर्थ का महत्व क्या है ? यहाँ से कितने भक्त आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया ? उनमें से किन्हीं प्रसिद्ध प्रसिद्ध के नाम बताइये ?

म लगता है उस काल में वह फल नहीं देता है, इस के काल का अवाधाकाल कहते हैं अवाधाकाल के पश्चात् कम की स्थिति तक जितने समय होते हैं उतने ही विभाग कम परमाणुओं के होकर (कम परमाणुओं के एक विभाग को निपेक् कहते हैं) एक एक निपेक् एक एक समय में उदय आता रहता है अर्थात् फल देकर झड़ता रहता है । इस घटवारे में पहले समयों में अधिक कम व आगे कम कम आते हैं अन्तिम समय में सब से कम फल देकर ये सब कम भस्ते जाते हैं । यदि बाहरी द्रव्य क्षत्र काल भाव अनुकूल होता है तो फल देकर झड़ जाते हैं नहीं तो बिना फल दिये झड़ जाते हैं । जैसे किसी ने क्रोध कपाय रूपी कम ४८ मिनट की स्थिति का बाधा और एक मिनट उसका अवाधा काल हुआ और कुल ४७०० कम हैं तो व कम ४७ मिनट में घट जाते हैं पहले पहले मिनट में ज्यादा २ कम झड़गे, आगे आगे कम होन चले जावेंगे । यदि इतनी देर तक उस समय में कोई एकांत में बैठकर सामायिक कर रहा है तो निमित्त न होने से क्रोध के फल को बिना प्रगट किये हुये ये कम झड़ जावेंगे यदि किन्ही क्रोध कर्मों का बल तीव्र हागा तो द्वेषभाव किसी पर आजावगा । यदि मंद हागा तो कुछ भी विचार परिणामा में नहीं आवगा । (इसके बारे में विशेष विवरण गोष्मटसार कमकाण्ड से जानना चाहिये) ।

(गाथा कमवाड ४४९ ४५०)

उदीर्णा—जो निपेक् अभी तक उदय में आते योग्य नहीं हुआ

है, उसका पहले ही उदय म ने आना अर्थात् उदय म आने वाले निषक म मिला देना । कम का समय से पहले ही जल्दी उदय मे लाकर खिरा देता ।

उपशांत—वह निषक जो अभी उदय म आने वाले नहीं हुये हैं और न जिनकी उदीर्णा हो सकती है ।

निषत्ति—जो कम उदयावलि में प्राप्त न हो सके और सक्रमण अवस्था को प्राप्त न हो सके ।

निकाचिन—जिस कम की उदीरणा सक्रमण, उत्कपण और अपकपण ये चारो ही अवस्थाय न हो सकें ।

सख - कर्मों का विद्यमान रहना मूल कम प्रकृति को छोड़कर किसी मूल कम की एक मन्तर प्रकृति उस ही कम की दूसरी प्रकृति बिन्कुल बदल सकती है, इसको निसंयोजन कहत हैं ।

इस प्रकार आपने देखा लिया कि बहुत हृदनक कर्मों मे अपकपण, उत्कपण सक्रमण आदि के द्वारा एक समारी जीव अपने को दुखी सुखी बना सकता है । अपने पतन तथा उत्थान के लिये वह स्वयं जिम्मेवार है । मुख दुख दाना कोई नहीं, जीव का पाप पुण्य है कारण बोरा' ।

यदि कोई पापकर्म कर देता है और वह पीछे उसका प्रतिक्रमण (पश्चात्ताप) बड़े ही गुद भाव से करता है तो पाप कम पुण्य मे बदल सकता है या पाप कम की स्थिति का घटा सकता है । यदि किसी न पुण्य काय किया, पुण्य बाँधा, पीछे वह पछताता है कि मैंने इतना समय इस गुभ कम म लगा दिया, मेरा व्यापार निबल गया, मेरा आहूक चला गया या और कोई हरजा हो गया तो ऐसे परिणामों से बधा हुआ पुण्य कम भी पाप रूप हो सकता है या पुण्य कम का अनुभाग घट सकता

भारतीय प्राचीनकला की एक अद्भुत ज्योति

श्रवण बेलगोल

श्रवण का अर्थ है श्रमण या जन मूनि, बेल का अर्थ है श्वेत और गोल का अर्थ है सरोवर। इस प्रकार श्रमण बेलगोल अर्थात् 'जन-श्रमणों का श्वेत सरोवर' नाम से विख्यात जनो का यह प्रसिद्ध तीर्थ कर्णाटक प्रान्त में वर्तमान मैसूर राज्य के हासन जिले में स्थित है इसे जन वट्टी, जन काशी अथवा गोम्मट तीर्थ भी कहते हैं। यह स्थान चिरवाल से जनधम का एक प्रधान धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। अत्यन्त रमणीय प्राकृतिक वातावरण के मध्य विन्ध्यगिरि एवं चन्द्रगिरि नामक युगल पर्वत स्थित है, उनकी तलहटी में जैन मंदिरों, चत्वारालयों तथा अन्य संस्थाओं से भरपूर एक छोटा सा नगर है, एक पर्वत के ऊपर उक्त श्वेत सरोवर विद्यमान है।

इन मंदिरों का वसति कहते हैं जिनमें से कई बड़े विष्णु हैं। अनेक रंग विरगी विविध पाषाणमयी जिनविम्बों से ये मंदिर भरे हुए हैं। यहाँ के शास्त्र भण्डार भी प्रसिद्ध हैं। इनमें हजारों की संख्या में ताडपत्रों पर लिखे हुए जैन हस्तलिखित ग्रंथ मौजूद हैं। ग्राम में श्रीमद् चारुकीर्ति महाराज की भट्टार कीय गद्दी है। शंकराचार्य की भाँति 'चारुकीर्ति' पर भी परम्परागत है और यह गद्दी भी शंकराचार्य पीठकी जितनी ही प्राचीन है। यहां के पर्वतों एवं मंदिरों में लगभग पाँच सौ शिवलिंग हैं, जिनमें से अनेक ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े मूल्यवान हैं।

उक्त दोनों पवता मे मे चन्द्रगिरि बहुत प्रसिद्ध प्राचीन पवन है जिस पर द्वादश वर्षीय दुर्भिन के समय उग्रायय ने श्री भद्रनाथ स्वामी ने १०० मुनिया के साथ प्रतिमा स्थापित कराई थी। भद्रनाथ स्वामी भगवान् महावीर की विष्णु परम्परा का प्राठवी पीढ़ी में थे और अन्तिम श्रुति बसलि थे। मगध के सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य इनके प्रिय विष्णु थे। वे अपने पुत्र विन्धु शार को राज्य सौंप कर गुप्त व माय हो दक्षिण देश को विजय कर गये थे। इसी पवत पर उठने भी उन विष्णु और रामाधिपतय द्वारा सद्गति प्राप्त की। उन स्थान पर पाये जाने वाले पैलायन मे प्राचीन भारतवर्ष व इस महान् प्रतापी सम्राट् का जन होना भली भाँति सिद्ध होता है। पवत पर यह प्राचीन पुता भी विद्यमान है जिसमें स्थापित इस गणपति व गुरु की सेवा में और तपश्चक्रात् तप करण किया। पवत पर मुन्दर भाँद, तान्त्रिक, सरायर विपद्या धार्मिक अन्य प्राचीन स्मारक उभये हैं।

विष्णुगिरि नामक दूसरे पवत पर श्री बाहुबलि महाराज व गोम्मट स्वामी की जगत प्रसिद्ध विशालकाय उत्तुङ्ग प्रतिमा। ५७ फीट ऊँची यह पद्मनाभ महामनाय श्रुति बहुत धारदार बारह मील की दूरी से दीख पड़ती है। समार की नौमिनी सादृश्यजनक वस्तुओं में तथा प्राचीन भारत व सादृश्यों में समको गणना है। यह उठे बलाविन इस श्रुति की नावट आवृत्ति एवं छवि को दसकर दम रह गये हैं। ऐसा ही जाना है कि इन श्रुति के पास गन् नहीं बढती इसके पास नहीं पड़ती और न कोई पत्थी इस पर बढता है।

यह प्रभु मनोहारा श्रुति भगवान् कन्दर्प के पुत्र विष्णु स्वामी की है। ये महापुण्य इस स्थान पर

माक्षगामी जीव थे। आदरा धमपूर और परम तपस्वी थे। रागह वय तब एक ही स्थान पर एक ही आसन से लड़े होकर इन्होंने दुद्ध र तपस्वरण किया था। यह मूर्ति उस युगादि परम तपस्वी का ऐसा सफ़्त सजीव प्रतिबिम्ब है कि इसके दर्शन से यथायक रही भावने लगता है कि वह महापुरुष ससार की असत्यता और काल की विनाशक शक्तियता का पुनोती देता हुआ एक परम सम्भीर परम शान्त मृदु मुस्मान थे साथ अपने निजी, स्वाधीन, अनन्त अविनाशी आत्मानन्द में विभोर है।

इस आश्चर्यजनक मूर्ति का स्थापना मन् ६८३ ई० क लगभग दक्षिण व गगनरंग राजमल्ल मत्स्यवापय परमाश्रित्य के प्रधानमन्त्री गव सनापति अनक उपाधियों में विभूषित महाराज चामुण्डराय ने की था। ये नरपुंगव अपने समय के न केवल एक महानीर याद्धा एक परम युद्धाल सेनानी, अनगिनत युद्धों का विजिता, परम निपुण राजनीतिज्ञ एवं शासनाधिशारी थे बल्कि एक महान् साहित्यकार और परम धर्मात्मा श्रावक भी थे। अपनी माता के यह बड़ परम भक्त थे और उनकी इच्छा पूर्ति के लिये/उन्हीं की प्रेरणा से गाम्मट की इस अप्रतिम मूर्ति का इन्होंने स्थापना की।

इस मूर्ति की पूजा मायता और अविनाश जन समान में बहुत ही अधिक है। दूर दूर से हजारों यात्री इसके दर्शन के लिये आते हैं। अनन्त विष्णुदर्शनियों इस मूर्ति के सम्मुख में प्रक्षलित हैं। प्रत्येक बारह वष के उत्तरात इस मूर्ति का महा सम्मवाभिषेक होता है, जिसमें लाखों काया व्यय होता है और लाखों श्रद्धालु जन एवं अजन उसमें भाग लेते हैं। इस तीर्थ में और उसमें प्रत्येक में राज्य की भी पूरी दिलचस्पी और महयोग रहता आया है।

वास्तव में इस तीर्थ के ग्राम पास के अधिकांश राज्या का राज्य धर्म चिरकाल तक जनधर्म ही रहता था और यह स्थान जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र तथा जैन सांस्कृतिक प्रमुख दीप स्तम्भ बना रहा है।

(प्रो० ज्योतिप्रसाद जैन एम० ए०, एम० बी०)

प्रश्नावली

- १—इस क्षेत्र का नाम थकणवनगल क्या प्रसिद्ध है ?
- २—इस तीर्थ का निर्माण कब और कसे हुआ ?
- ३—बाहुवल स्वामी के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?
- ४—सांस्कृतिक दृष्टि से बाहुवल स्वामी की इस महान् दिव्य मूर्ति का क्या महत्व है ?
- ५—इस क्षेत्र का सक्षिप्त विवरण आपन गान में दीजिये ?
- ६—इस तीर्थ के दान से क्या नाम होता है ?

भगवान् बाहुबलि की तपस्या और कैवल्य

— ० —

(१)

जा करके बाहुबलि न तपोवन में जा किया ।
उस वृक्ष ने ससार सभी दग कर दिया ॥
तप वन लिया कि ताम जहाँ में बसा लिया ।
बहते हैं तपस्या बिसे, इसको दिसा दिया ॥

कामात्मग वष भर अविचलित तबड़े रहे ।
ध्यानस्थ हम कदर रहे, कवि बिम तरह बह ।

(२)

मिट्टी जमी शरीर से सट कर, इधर उधर ।
फिर दूब उगी बलें बढ़ी धाहा प जो चक्कर ॥
बाँधी बना क रहने लगे मौज से फनधर ।
मृग भी गजाने साज लगे ठूँठ जान कर ॥

निस्पृह हुए शरीर से वे आत्म ध्यान में ।
चर्चा का विषय बन गये सारे जहान में ॥

(३)

पर शाय रही इतनी गोमटेश के भीतर ।
‘ ये पर टिक ह मरे चक्की की भूमि पर ॥ ’
इसने ही राज रक्सा था कैवल्य का दिनकर ।
वरना वह तपस्या थी सभी जाते पाप भर ॥



श्री बाहुवली स्वामी

- यह बात बड़ी और सभी देग में छाई ।
इतनी कि चक्रवर्ति के कानों में भी आई ॥

(४)

सुन दोड़े हुये आये भक्ति भाव से भर कर ।
फिर खोले मधुर-वन में चरणों में भुजा भर ॥
योगीश ! उसे छोड़िये जो द्वन्द है भीतर ।
हो जाय प्रगट जिससे गीघ आत्म दिवाकर ॥
हो धन पुण्य भूति कि तुम हो तपस्वर ।
प्रभु ! घर सखा है कौन तुम्हारी बराबरी ॥

(५)

मुझ से अनेका चकी हुये, होत रहेंगे ।
यह सच है कि सब अपनी इसे भूमि रहेंगे ॥
पर, आप सचाई पे अगर ध्यान की देंगे ।
तो चक्रघर की भूमि कभी कह न सकेंगे ॥
मैं क्या हूँ ? तुच्छ ! भूमि कहाँ ! यह ता विचार ।
वाटा निवाल दिल से अवलार को माने ॥

(६)

चकी ने तभी भाल को परती स लगाया ।
पद रज को उठा भक्ति से समक प लगाया ॥
गोया ये तपस्वा का ही समर्थ दिखाया ।
पूजना जो चाहता था वही पूजन आया ॥
फिर क्या था, यन राइन् सभी दूर हो गया ।
अपनी ही न्य राई से भग्नूर हो गया ॥

(७)

कवत्थ मिला, देखा नित पूजन आये ।
नर नारियों ने सब ही शानद मनाये

(१४८)

चक्री भी अन्तरंग मे फले न समाये ।
भाई की आत्म-जय पे अथु आँख मे आए ॥

हैं बन्दनीय, जिसने गुलामी समाप्त
मिलनी जो चाहिये वही आजादी प्राप्त ॥

(८)

उस गोमटेद-प्रभु के सौम्य रूप की भाँकी ।
वर्षों हुये कि विश्व शिल्पकार ने आँकी ॥
विस्तनी है कला पूरा, विदाद पुण्य की भाँकी ।
दिल सोचने लगता है, चूमूँ हाथ या टाँकी ॥

है श्रवण बलगोल मे वह आज भी सुस्ति
जिमको विदेशी देगके हाते हैं चपित चि

(९)

कहत हैं उमे विश्व का वे आठवाँ अक्षरज ।
खिल उठता जिसे दख के अन्तरंग का पक्कज ॥
भुगतें हैं और लेते हैं श्रद्धा से चरण रज ।
ले जाते हैं विदग उनके अक्स का कागज ॥

वह धन्य, जिसने दशना का लाभ उठाया ।
वेगव सफल हुई हे उमी भक्ति की काया ॥

(१०)

उस मूर्ति से है ज्ञान कि गोभा हमारी ।
गौरव है हम, हम है उस प्रभु के पुजारी ॥
जिसने कि गुलामी की बना मिर मे उतारी ।
स्वाधीनता व मुक्त की थी जो कि चिगारी ॥

आजादी सिन्हाती है गोमटेद की गाथा ।
भुक्ता है अनायास भक्ति भाव से माथा ॥

“भगवत्” जन्ही सा सौर्ज हो साहस हो मुबल हो ।
जिससे मुक्ति-नाम ल, नर जन्म सफ्त हो ॥

—स्य० भगवत् जी

प्रश्नावली

- १—बाहुबलि घोर नरत का क्या सवाद हुआ ?
- २—बाहुबलि की तनस्या कयो प्रमिड है ?
- ३—बाहुबलि को बहुत दिना तप घोर तपश्चरण करते हुये भी
वेवलनान कयो न हुआ ?
- ४—बाहुबलि स्वामी की मूर्ति का क्या महत्त्व है ?
- ५—जदि ने अन्त मे क्या भावना भाई है ?

जीवनोद्देश्य और उसकी पूर्ति

—०—

हमारा जीवन एक महान् लीला या नाटक है जिसमें हर्ष, विषाद, शोक, आत्माद, धूप-छाया, सर्दो गर्मी सब मिले हुये हैं। और हमको सब में योग देना पड़ता है। हमारा कतब्य है कि हम हर एक बात को चाह कुछ हाँ और कभी हो बड़ी वीरता से और उत्तमता से करें। कोई कारण नहीं कि कुछ तो प्रसन्नता से करें और कुछ अप्रसन्नता से। प्रत्येक दशा में समय के अनुकूल प्रवृत्ति करें, परन्तु हृदय पर इसका कोई असर न होने दें। हृदय में सदैव उद्देश्य पर दृष्टि रखें और ससार के बदलते हुये रंगों से उस पर कालिमा न लगन दें। जैसे एक “स्टेज एक्टर” या नाटक पात्र को इससे कुछ प्रयोजन नहीं कि उसका पाठ हर्षात्पादक है या गीतप्रद, राजा का है या रक्षक, छोटा है या बड़ा, अच्छा है या बुरा। इसी तरह हमको भी ससार की घटनाओं में समरूप रहना चाहिये, अच्छी बात से हर्ष न करें और बुरी से शोक न करें, हर बात का समान भाव से करें। यदि हमको कोई उच्च पद मिल जाय तो उसका अभिमान न करें और यदि किसी नीच पद पर उतार दिये जाय तो कोई विषाद न करें—प्रत्येक दशा में समभाव और समरूप रहें। इसके अतिरिक्त अच्छे सत में प्रवेश और निष्कृति का भी विचार होता है, परन्तु रंगभूमि में प्रवेश तो प्रायः अपने अधिकार से बाहर होना है परन्तु रंगभूमि में किस प्रकार अपना पाठ करना चाहिये तथा वहाँ से किस तरह निवृत्ति चाहिये

यह हमारे अपने हाथ में होता है और इस अधिकार को कोई व्यक्ति या कोई शक्ति हमसे छीन नहीं सकती । इसी पर हमारे काम की अच्छाई बुराई निर्भर है और इसका हम जितना चाहें सुन्दर और यशस्वर बना सकते हैं । हमारे जीवन की वर्तमान स्थिति चाहें जितनी ही नीच और पतित क्यों न हो परन्तु हम अपना पाद अच्छे तरह उत्साह के साथ कर तो हमारा इस रगभूमि में बाहर निकलना अर्थात् हमारी मृत्यु बड़ी ही प्रशस्तनीय और प्रादरणीय होगी ।

हम इस सत्कार में इसलिये आये हैं कि अपने अनुभव से यह मालूम कर कि गुह्य आत्मा क्या वस्तु है और उसकी क्या शक्ति है । आत्मा को वास्तविक शक्ति को जानना ही माना परमात्मा की शक्ति को जानना है । यही हमारा अभीष्ट और यही हमारा उद्देश्य है । जितना हम अपने समय को आनन्द से व्यतीत करते हैं और जीवन की बढ़ती हुई अवस्थाओं में समानभाव से प्रवृत्त होते हैं उनका ही हम अपने उद्देश्य और मनोरथ में सफल होते हैं । अतएव हमको जीवन की अवस्था में धीरे धीरे रहना चाहिये, चाहे वह अवस्था अच्छी हो या बुरी नीची हो या ऊँची । जिन कार्यों को करने की हम शक्ति समर्थ हैं उनको यथासम्भव अच्छे प्रकार करना चाहिये और जो बात हमारी शक्ति से बाहर है उनमें व्यय न पड़ना चाहिये । सब शक्तिमान् पाता दृष्टा परमात्मा इन बातों का स्वयं ही देख रहा है, अतएव हम इनके विषय में कोई भय या चिन्ता न करने चाहिये और न कभी इनका विचार करना चाहिये ।

जिन बातों और जिन कार्यों से हमारा सम्बन्ध है उनका सर्वोत्तम रीति से करना, अपने मायानुषांगों व बुद्धियों को यथा-शक्ति सहायता करना, दूसरों की दुष्टियाँ और कमियाँ को दूर

करन तथा उह कुमाय स हटा कर सत्य माग पर लाना जिससे व पापमय जीवन व्यतीत करने-के- स्थान में धार्मिक प्रशस्त्य जीवन व्यतीत कर तथा अपन स्वभाव का सदा सरल शुद्ध और विनीत रखना जिससे ईश्वरीय शक्ति का विकास हो सके, अपने का सदा उत्तम कार्यों के लिये तया- रखना, सबसे प्रेम और सहानुभूति रखना और किसी से भी -नही डरना परन्तु पाप से सदा भयभीत रहना समस्त पदार्थों-के उत्तम गुणों को देखना और उनके प्रकाश की आशा करना इन सब बातों से जीवन बड़ा ही प्रशस्त्य और आनन्दमय होगा और फिर हमको किसी भी चीज से डरने की जरूरत नहीं रहगी, न जीवन से, न मृत्यु से । मृत्यु हमारे स्थायी जीवन का द्वार है, अर्थात् इस स्थूल पौद्गलिक शरीर के विनाश से ही मोक्ष प्राप्त होता है । जहाँ आत्मा शुद्धतम अवस्था को प्राप्त करके अनन्य सुख का अनुभव करता है, फिर उसके बाद कोई बाधन नहीं, न जन्म मरण है न दुःख व्याधि है । अनन्तर हमें मृत्यु से कदापि नहीं डरना चाहिये, किन्तु सदैव मृत्यु का हृदय से स्वागत करना चाहिये और अपने का मृत्यु के लिये तयार रखना चाहिये । परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि हम ऐसा जीवन व्यतीत कर बि जिससे जन्म मरण का बाधन सदैव के लिये टूट जाय । इसमें सन्देह नहीं कि यह एक महान् कठिन कार्य है । इसके लिये अनेक प्रबल शत्रुओं से युद्ध करना होगा । धार परीपह सहनी होगी, कठिन श्रत धारण करना होगा, इन्द्रिया को दमा करना होगा, क्रोधादि विकारों को शमन करना होगा, परन्तु लाभ भी इससे अनन्त और अपार होगा ।

इसमें तनिय भी सन्देह या विषाद नहीं है कि हमारे जीवन का सम्पूर्ण आचार व्यवहार हमारी आंतरिक दशा पर निर्भर । जीवन का स्वात ही हमारे अन्तरंग में है ।

अपनी आन्तरिक दशा पर अधिकतर विचार करना उचित है। हमको चाहिये कि प्रतिदिन थोड़ा सा समय शान्ति के साथ एकाग्र में इस विषय पर विचार करने के लिये निश्चित करें। इस समय अपने चित्त को अगुद्ध योग में रोक कर शांतभाव धारण कर अपनी आत्मा का विचित् चिन्तन करें। निश्चय से यह हमारे लिये बड़ा ही उपयोगी और लाभदायक होगा, क्योंकि यदि कारण से इसकी आवश्यकता है। प्रथम तो हमसे यह लाभ होगा कि हम अपने हृदय और अपने जीवन में से बुराई के बीज निकाल सकेंगे। दूसरे यह लाभ होगा कि हम अपने जीवन के उद्देश्य उच्चतर बना सकेंगे। तीसरे यह लाभ होगा कि हम उन बातों को स्पष्ट रूप में देख सकेंगे जिन पर हम अपने विचारों को जमाना चाहते हैं। चौथे यह लाभ होगा कि हम यह जान सकेंगे कि हमारी आत्मा में और परमात्मा में क्या भेद है और उनमें क्या सम्बन्ध है। अतएव उनकी भक्ति में अधिक लीन हो सकेंगे। पाँचवें यह लाभ होगा कि हम अपने दैनिक साधारण प्रपञ्चों में यह याद रख सकेंगे कि वह सब शक्तिमान् अनन्त ज्ञान, अनन्त दान, सयुक्त परमात्मा जो जगत् गुप्त है वही हमारे जीवन का मूल और हमारी सम्पूर्ण गतिविधि का स्रोत है और उससे पृथक् न हम में जीवन है और न शक्ति है। इसी बात को अच्छी तरह समझ लेना और सदा इसके अनुसार चलना मानो ईश्वर को प्राप्त कर लेना है। इसी का नाम ईश्वर दर्शन, मत्प्राप्य भक्ति और शुद्ध उपासना है। ईश्वर हमारे घट में विराजमान है, हम से पृथक् नहीं है। इस विचार के परिपक्व हो जाने से हमारे हृदय में ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश होने लगता है और जितना ही यह प्रकाश बढ़ता जाता है उतना ही हमारा ज्ञान अनुभव और बल बढ़ता जाता है। वास्तव में आत्मा में परमात्मा का बोध होना ही समस्त मर्तों और धर्मों

का सार है। इसमें हमारा प्रत्येक काय धर्म का एक अंग बन जाता है और हमारा उठना बैठना, चलना फिरना, खाना पीना भी दशन, पूजा और व्रत उपवास के सहित हो जाता है। इसमें कुछ संदेह नहीं। जो धर्म मनुष्य की प्रत्येक क्रिया पर भटित नहीं होता, जिस धर्म में प्रत्येक काय से पुण्य पाप का बंध नहीं होता वह नाममात्र का धर्म है, वास्तव में धर्म नहीं है। ससार भर के अवतारों, महात्माओं, धर्मोपदेशकों और सिद्धान्त वैज्ञानिकों ने चाहे वे किसी युग में हुए हों और किसी देश में हुए हों इस बात को गवस्तर से समझन किया है। चाहे और कितनी ही बातों में उनमें अन्तर हो परन्तु यह सिद्धान्त सत्य है।

महान् आचार्यों का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि जब तक तुम छोटे बालकवत् निर्विकार, निभय तथा निष्पाप न हो जाओ तब तक तुम ईश्वरीय राज्य में प्रवेश नहीं पा सकते। जैसे छोट बालका की पाप में प्रवृत्ति नहीं होती उनमें क्रोध, माता, माया, लोभ की तीव्रता नहीं होती, वे पीतल और सोने का बराबर समझते हैं, उमी तरह तुमको भी उचित है कि अपनी कपाया की मद करो, हृदय को शुद्ध करो और बुरी वासनाओं का दमन करो। सदैव परमात्मा का स्मरण करो और अपने आत्मा को परमात्मा बनाने का उद्योग करो। ऐसा करने से तुमका ईश्वरीय राज्य अर्थात् मोक्ष मिल सकता है।

आजकल प्रायः इस विषय की ओर लोगों का बहुत कम लक्ष्य है, वे रात दिन सामाजिक काम व्यवहार में ऐसे लगे रहते हैं कि आत्मिक उन्नति का विचार तक भी नहीं करते, इसी कारण से लोग नित्यशः जड़वादी नास्तिक होते जाते हैं। आत्मा परमात्मा शब्दों से ही उन्हें घृणा होती जाती है यह बड़ा भारी दोष है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। ऐसे मनुष्यों

को सामारिक विषया में भी प्रायः सफलता नहीं होती, कारण कि उनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता और इस कारण से उन्हें कभी सन्ताप या तृप्ति नहीं होती। इसमें हमारा यह तात्पर्य नहीं कि सासारिक वाय व्यवहार को छोड़ दिया जाय और फिर मुड़वा कर भगवत्सुख धारण कर लिये जाय अथवा घर छोड़ कर जंगल में वास कर लिया जाय। आज कल हम लोगों में ऐसी शक्तियाँ नहीं हैं कि रात दिन ध्यान आदि कर सकें। इसके अनिश्चित जय तक गृहस्थी में रहकर नियमानुसार व्रतव्रत उन्नति न की जाय तब तक यह सम्भव भी नहीं। आजकल किन्तु ही मिथ्या भयघातो अपने को साधु महात्मा, नियमी, सयमी कहते हैं जो वास्तव में साधु नहीं हैं। अतएव हमको कोई आवश्यकता बिना साधु समझ और बिना शक्ति सत्कार छोड़ने की नहीं है। हमारा अभिप्राय यह है कि हम प्रथम यह विचार कर कि हम कौन हैं ? कहाँ में आये हैं और क्यों आये हैं ? तदनन्तर अपने जीवन का उद्देश्य स्थिर करें अर्थात् इस बात का निश्चय कर कि हम अपने आपका क्या और क्या बनाना चाहते हैं। कम फिर चाह कोई काम करें, सदैव उस उद्देश्य को अपनी दृष्टि के सामने रखें। ऐसा करने से हमको प्रत्येक वाय में सफलता होगी और हम बहुत जल्द अपनी मनाशामना की पूर्ण कर सकेंगे।

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक दशा में और प्रत्येक वाय में अधिकार हमारे ही हाथ में है। हम जिस आर चाहें वहाँ और जहाँ तक चाहें उन्नति कर। गुण प्राप्ति आत्मानुभव ईश्वर दशन, चारित्र्य गठन आदि सम्पूर्ण बातें हमारे आधीन हैं। हम अपने जीवन के स्वामी हैं और पूर्ण अधिकारी हैं। चाह इसे ऊँच दर्जे पर पहुँचाद चाह नीचे गिरा दें। मनुष्य जिस वस्तु के लिये उद्योग करता है वह अवश्य उसको मिल जाती है। सत्कार

मे लमा कोई भी पदार्थ नहीं जिसके लिये हम शुद्ध हृदय से इच्छा कर—पूरा रूप में उसकी प्राप्ति के लिये उद्योग करें और वह न मिले। मनुष्य जिना उन्नति करता जाता है और जो उन्नति अपने अभीष्ट के निकट पहुँचता जाता है उसकी शक्ति बढ़ती जाती है और निकटवर्ती मनुष्यों पर उसका प्रभाव अधिक होता जाता है। निम्नलक्षणी मनुष्यों को उसे देखकर घोरज बँध जाता है और उसका उत्साह बढ़ जाता है। हमने मनुष्य उससे सहारा लेते हैं और उसकी दया दायी उन्नी भाग पर चलने की इच्छा करते हैं। जिन मनुष्यों के विचार और उद्देश्य समुचित होते हैं वे उसका अनुकरण करके अपने उद्देश्य और विचारों को उच्च और ऊँदार बना लेते हैं। इस प्रकार वह मनुष्य स्वयमेव सत्य भाग का प्रदर्शक हो जाता है। तब आगे बढ़कर उसे ज्ञान होगा कि वह अनेक निम्नलक्षणी मनुष्यों का कवल अपने मानसिक विचारों से उत्साहित कर रहा रहता रहता है और अनेक असहाय मनुष्यों का कवल अपने मानसिक से अवलम्बन देकर सहायता पहुँचा सकता है। यह मानसिक उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होता है कि यदि हमें पूरा रीति से समझ कर इसका सदुपयोग किया जाय तो इससे अपरिमित लाभ हो सकता है। सहयोगी व्याख्याना का भी इतना प्रभाव नहीं पड़ता।

जो मनुष्य प्रतिदिन थोड़ा सा समय एकांत में आत्मचिन्तना में व्यय करता है और अपने उद्देश्य पर दृष्टि रखकर अपने और परमात्मा के सम्बन्ध का पहचानता है वह मनुष्य सासारिक कर्मों के लिये भी बड़ा योग्य और चतुर है। वही मनुष्य अपनी बुद्धि और चतुराई से कठिन में कठिन कार्य को भी भली भाँति कर सकता है। वह कर्मों के लिये नहीं बनाता

किन्तु गताव्यया के लिये बनाना है क्योंकि भलाई और सच्चाई का भ्रमर बर्षा तक नहीं मिटता वह नियत समय के लिये ही काम नहीं करता किन्तु घनन पास के लिये तयारी करता है क्योंकि जब मृत्यु आजायेगी उस समय इन्द्रिय दमन चित्त निर्गोष, आत्म निभरता और ईश्वरानुभव यही वस्तुयें उसके साथ जायेंगी क्योंकि इन्हीं वस्तुओं की उसके पास बहुलता है। उसको जीवन मृत्यु से कोई भय छूटा नहीं वह जानता है समझता है और उस धृढ़ता है कि परमात्मा मेरी रक्षा करने के लिये तयार है वह निरंतर जहाँ चाहे जाता है, वह निश्चय पूर्वक जानता है कि मैं जहाँ जाऊँगा मर समय तक मेरी रक्षा करेंगे। वदपि मुझ अघनूप में न छाड़ें किन्तु सर्व मुझ लिये जायेंगे यहाँ तक कि अन्त में मैं उन अनन्त अमय स्थान पर पहुँच जाऊँगा जहाँ से फिर कभी वापस न आऊँगा और जहाँ अनन्त दशम अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख, अनन्त वाय का धारी हो जाऊँगा उसी स्थान का नाम मोक्ष है।

(चारित्र्य गठन और मनावल सं)

—स्व० श्री दयाचंद गायत्रीय बी० ए०

प्रश्नावली

- १ एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य क्या होना चाहिये ?
- २—जीवनाद्देश्य का प्राप्ति में सफलता प्राप्त करने के लिये किन किन बातों की आवश्यकता होती है ?
- ३—जीवन को सफल और आनन्दमय बनाने के लिये किन किन बातों की आवश्यकता है ?
- ४—द्वितीय राज्य या भाग्य प्राप्ति के लिये सबसे अधिक किन बातों की आवश्यकता है ?
- ५—इस पाठ का सारांश अपनी सरल भाषा में लिखिये ।

शिक्षा के दोहे -

(द्यानत)



सुा सुा चेतन ! लाडले, यह चतुराई कौन ।
आत्म हित तुम परिहरो, बरत विषय चिन्तन ॥१॥
गहरी नीच सुदाय क, भका किया मजबूत ।
एक घडी रह ना सब, जब आवै जमदूत ॥२॥
स्वारथ सब जग बलभा, बिा स्वारथ नहि कोय ।
वज्र त्यागै गाय को, दूध बिना जो होय ॥३॥
और फिर सब छाड़ दे, दो अक्षर लिख लह ।
'द्यानत' भज भगवत को, अथ भूखे को देह ॥४॥
य ससार असार ह, गव न कर मन माहि ।
ज जे उपज भूमि प, जगसा छूट नाहि ॥५॥
जिनको भौहै करवत, डरते हृद कनिन्द ।
पावन पवत फोडते, खाये काल मणिन्द ॥६॥
नारी सकल सारंगी, सुत फांसी अनिवार ।
घर बदीखाना कहा, लोभ मु चौकीदार ॥७॥
अर अनुभव कीजिय बाहर करुणा भाव ।
दो घातन कर हृजिय, "द्यानत" शिवपुर राय ॥८॥
चेतन प्राणी चतिय छिन छीन छीजत आव ।
पल पल दे चतावणी, कर निज हित अव दाव ॥९॥

जो छिन खोवत भाग मे, मो छिन भज क्या नाम ।
 बात नरकादिक मिल, पापें, मुक्त अभिराम ॥१०॥
 विषय भुजग के दस स्ते बहुत ससार ।
 जिहें विषय व्याप नहीं, तिनको जीवन सार ॥११॥
 नरभव दुलभ ह महा, नर बिन मुक्ति न होय ।
 भाग्य उदय नर भव मिलो, विषयन संग मन सोय ॥१२॥
 तन घन साज कुटुम्ब के, कारण करता पाप ।
 इन टगिया के बस पडा, पाप बहु दुख घाप ॥१३॥
 जिन को तू भपना कह सो तो तेर नाहि ।
 क तो तू इन को तज, क ये तोहि तज जाहि ॥१४॥
 पलक एक की सुष नहीं, तिर पर गाज काल ।
 तू निखिन क्यों यावरे छाँटहु सब भ्रम जाल ॥१५॥
 भज भगवन्त महान को, जीवन-प्राण प्रधार ।
 जा हित मुख चाह आपका, 'दानन' कहै पुकार ॥१६॥

प्रश्नावली

- १—इन दोहा में से जो तुम्हें सबसे प्रिय हो कशम सुनाये ?
- २—पिछने पाँच दाहो का प्रथम करने शब्दा में सुनाइये ?
- ३—इस पाठ से आपका क्या क्या शिक्षायें मिलनी हैं ?

नागरिकता



जब से देश स्वतन्त्र हुआ है तबसे 'नागरिक' तथा 'नागरिकता' 'व्यक्तव्य तथा अधिकार' ऐसे शब्दों का प्रयोग अत्यन्त साधारण हो गया है। नागरिक शास्त्र का पठन पाठन स्कूल तथा कॉलेजों के विद्यार्थियों के लिये अति आवश्यक विषय बन गया है। इसके अध्ययन से बालक यह भीखते हैं कि व्यक्ति के अपने प्रति, अपने कुटुम्ब के प्रति ग्राम व नगर के प्रति राष्ट्र के प्रति इस विशाल मानव समाज के प्रति क्या व्यक्तव्य और अधिकार हैं। नागरिकता सभ्यता के विकास की सीढ़ी है। एक सच्चा नागरिक सदा समाज के विकास के साथ साथ अपना विकास करता हुआ भाग बढता है। व्यक्ति में समष्टि और समष्टि में व्यक्ति का दान करना है। मज्जी नागरिकता की भावना जागृत होने पर मनुष्य दूसरों के हितार्थ सदा अपना सबस्व त्याग करने का उद्यत रहता है। उसका अपना स्वायत्त पीछे हट जाता है। वह सदा सोन-कन्याएँ की मोचता है। उसका तन, मन, धन सब कुछ दूसरों के लिये हो जाता है। 'परोपकाराय सता विभूतयः' का सिद्धान्त सदा उसके सामने रहता है।

आज चारा और अधिकारों की मांग सुनाई पड़ती है। समाज के सभी सदस्य अपने अधिकारों के प्रति नितान्त जागरूक दिखाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि निष्पक्षी बग भी मिल मजदूरा की भाँति आज अपने अधिकारों के लिये सघप करते हुये दिखाई पड़ते हैं।

पति-पत्नी और पिता पुत्र में भी अधिकारों का एक भगडा चल रहा है, श्री यग कहता है कि हमारा भूत अधिकारों का अपहरण हो रहा है। निदान सभी नों अधिकार प्राप्ति के लिये व्यर्थ हैं। पर यह कभी न भूलना चाहिये कि इस प्रकार की अधिकारों की मांग सच्ची नागरिकता की श्रृंखला है। कर्तव्य पालन में ही अधिकार प्राप्ति का रहस्य छिपा है। जिस समाज अथवा राष्ट्र के सदस्य केवल अधिकारों के लिये चिल्लाते रहते हैं और अपने कर्तव्य पालन की ओर ध्यान नहीं देते वह समाज कभी भी सुमन्य एक उत्पन्न नहीं बन सकता। हम देखते हैं कि यदि हम अपने कर्तव्य का पालन करते हैं तो अधिकार हमें स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये देखिये कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी का अधिकार है कि उनकी सब पुस्तकें उसके अपने डेस्क में सुरक्षित रखी रहें वह निश्चय होकर कक्षा भवन के बाहर भूमे पड़े पर उनकी पुस्तकों को कोई हाथ न लगावे। साथ ही साथ प्रत्येक विद्यार्थी का यह कर्तव्य भी है कि वह किसी की पुस्तक को हाथ न लगावे साधिया की किसी भी वस्तु की चोरी न करे वरन् अपनी वस्तुओं की अपेक्षा साधियों की वस्तुओं की अधिक देखभाल करे। अब ऐगिय एक परिस्थिति है, व्यक्ति जो केवल अधिकार से चिन्तित है केवल अपनी वस्तुओं की सुरक्षा के लिए परेशान रहता है शायद व्यक्तियों को उसका कोई ध्यान नहीं दूसरी दशा में जब हम अपने कर्तव्य पालन की ओर अधिक ध्यान देते हैं तो हम दूसरों की वस्तुओं की सुरक्षा का ध्यान रखते हैं अपनी का नहीं। पहली परिस्थिति में व्यक्ति अपने-आप अपनी वस्तुओं का रक्षक है दूसरी में उसके अतिरिक्त अन्य सब उसकी वस्तुओं के रक्षक हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्तव्य पालन में ही वास्तविक अधिकार प्राप्ति होती है केवल अधिकारों के लिये चिल्लाने से नहीं। समाज

के निशाम के साथ ही व्यक्ति का विज्ञान सम्भव है । हमें अपनी अपेक्षा धारण करने पड़ेगी का मग्न अधिष्ठान रतना चाहिये । यदि पशुमी का जीवन सुखी है तो उसकी छाया हम पर प्रत्यक्ष पड़ेगी ।

नागरिकता में उन सभी गुणों का समावेश है जिनका पालन करने में मानव समाज मयागीण उत्पत्ति कर सके । चाहे सार प्रेम में अनुभूति और सुख का वातावरण बन सके ।

नागरिकता की भावना उत्पन्न होना ही हमारे सभी दैनिक कार्य सांख्यिक हो जाते हैं । दूसरा के साथ किस प्रकार का व्यवहार कर सारा में यदि रिगो का जाने अनजाने प्रहित हो जाय तो हम जिस प्रकार अपनी भूल के लिए क्षमा माचना करती चाहिये जिसमें सतत हृदय को सादरता मिल सके यह सभी बातें एक अच्छे नागरिक में हानी चाहियें ।

अभ्यास

- १—नागरिकता का क्या अर्थ है ?
- २—नागरिकता का महत्व स्पष्ट कीजिए ?
- ३—सिद्ध कीजिये अधिकारों की शाखा कल ध्य पालन पर निर्भर है ।
- ४—नागरिक का मुख्य कर्तव्य क्या है ?
- ५—नागरिकता के गुणों की विवेचना कीजिए ।

दशलक्षण या पर्यूपण पर्व

(ले०—श्री ५० कलाशचन्द्रजी शास्त्री जनधर्म से उद्धृत)

— ० —

जना का सबसे पवित्र पर्व दशलक्षण पर्व है। दिगम्बर सम्प्रदाय में यह पर्व प्रति वर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भाद्रपद कृष्णा १२ से भाद्रपद शुक्ला ४ तक मनाया जाता है। इन दिनों में जन मंदिरों में खूब आनंद छाया रहता है। प्रतिदिन प्रातःकाल से ही सब स्त्री पुरुष स्नान करके मंदिरों में पहुँच जाते हैं और बड़े आनंद के साथ भगवान् का पूजन करते हैं। पूजन समाप्त होने पर प्रतिदिन श्री तत्त्वाय सूत्र के दश अध्यायों में से एक एक अध्याय का व्याख्यान और उत्तम क्षमा मादक भाजक गौच सत्य सयम तप, त्याग आदिचर्य और ब्रह्मचर्य इन दश धर्मों में से एक एक धर्म का विवेचन होता है। इन दश धर्मों के कारण इस पर्व को दश लक्षण पर्व कहते हैं। क्योंकि धर्म के उक्त दश लक्षणों के इस पर्व में खास तौर से आराधन किया जाता है। व्याख्यान के लिये बाहर से बड़े बड़े विद्वान् बुलाये जाते हैं और प्रायः सभी स्त्री-पुरुष उनका उपदेशों से लाभ उठाते हैं। त्याग धर्म के दिन परोपकारी संस्थाओं का दान दिया जाता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदा के दिन पर्व की समाप्ति होने पर सब पुरुष एकत्र होकर परस्पर में गले मिलते हैं और गत वर्ष की अपनी गलतियों के लिये परस्पर में क्षमा याचना करते हैं। जो लोग दूर दगावटों में बसते हैं उनसे क्षमावणी पत्र लिखकर क्षमा याचना की जाती है।

प्राचीन हिन्दी गद्य-दर्शन

केकई की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा धोरता

उत्तर दिशा विष एक कौतुर मगल नामा नगर ताके पवत समान ऊँचा कोट, तहाँ राजा शुभमति नाम मात्र नही यथाथ शुभमति ही है, ताकी राणी पृथुथी गुण रूप आभरणा से मडित ताके केकई पुनी, द्रोणमघ पुत्र भण जिनके गुण दशो दिशा मे व्याप रहे। केकई अति सुन्दर, सब अग मनोहर, अद्भुत लगणो की धारणहारी, सब कन्याओ की पारणामिनी, अति गोभती भई। सम्यग्द्वान समुक्त, आविका के अत पालन-हारी जिन शासन की वेत्ता, महा श्रद्धावन्ती तथा साह्य, पातजलि, वशपिक, वेदांत, याय, मीमांसा, चार्वाकादिक पर शास्त्र रहस्य की ज्ञाता तथा लौकिक शास्त्र शृङ्गारादिक तिन की रहस्य जाने नृत्यकला मे अति निपुण, सब भेदो से मण्डित जो सगीत को भली नाँनि जान। सुर, तालके भेदानुभद के जानन हारी, चार प्रकार के वादित्र जसे वेकई बजावे तसे और कोई न बजा सके। सबल भाषाओ मे निपुण और रस के भेद नव शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, धीमत्स शास्त्र तिनके भेद जसे केकई जाने तसे कोई न जाने। अक्षर, मात्रा अर गणित शास्त्र मे निपुण गद्य-पद्य सब मे प्रवीण, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, नाममाला, लक्षण, शास्त्र तब, इतिहास और चित्रकला में अति प्रवीण तथा रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा,

नर परीक्षा, नख परीक्षा गज-परीक्षा वख परीक्षा, वख-परीक्षा सुगन्धादिक द्रव्यों का निपजावना इत्यादि सब बातों में प्रवीण । ज्यातिष विद्या में निपुण बाल वद्ध सम्यग्य मनुष्य तथा घोड़े हाथी इत्यादि सब के इलाज जान । मात्र औषधानि सब में तपन, वद्य विद्या निधान सब कला में मावधान महागोलवती महामनाहर युद्ध कला में अति प्रवीण, शृ मारादि कला में अति प्रवीण, विनय ही है आभरण जान, कला घर गुण घर रूप में ऐसी क्या और नाही । केरुई के गुणों का बरान कहा तक कर । तब एक दिन पिता ने विचार कि अभी क्या के योग्य कर बीन ? स्वयंवर करिय तहाँ यह आप ही कर । ताने हरि बाहुन पादि अनेक राजा स्वयंवर मंडप में बुलाये जा विभय कर समुक्त आय । तहाँ भ्रमते मने जनक सहित गगन भी आय । सो यद्यपि इनके निगड राज्य का विभय नहीं तथापि रूप और गुणों पर सब राजाओं तें अधिक हैं । सब राजा निहासन पर बठ घर कन्यो का दारपासा ने गवन के नाम प्राप्त गुण बहे हैं सो वह विवेकिनी माधू रूषिणी मनुष्या के लक्षण जानने वाली ने प्रथम तो दण्डरथ की ओर नेत्र रूप नीलकमल की माला डाली बहुरि वह मुदर बुद्धि की धारणहारी जस राजहमनी बुगलो के मय बठा जा राजहम उसकी ओर जाय तमे अनेक राजाओं के मध्य बठा जा दण्डरथ ताकी ओर गई । सो भाव माला तो पहल ही डाली हुनी अरु द्रव्य रूप जा रत्नमाला सो भी लोकाचार के अथ दण्डरथ के गले में डाली ।

इस पर कयक नप ज यायवन बठ नृत न प्रमत्त भये घर कहने भये कि असे क्या थी तसा ही योग्य कर पाया अर कयक विलख होय अपने देग उठ गये अर कयक जे प्रति डीठ ये ते ओघायमान होय युद्धको लक्ष्मी भये और कहते भये ज बटे बटे वग के उपजे अर महाशक्ति के मण्डित ऐम नपनिन को तजकर

प्राचीन हिन्दी गद्य-दर्शन

फोर्कर्ट की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा धीरता



उत्तर दिशा विष एक कौतुक मगल नामा अगर तावे पवत
समान ऊँचा कोट तहाँ राजा गुभमति नाम मात्र नही यथाय
गुभमति ही है, नाकी गली पृथुश्री गुण रूप आभरणा से
मडित ताके केवई गुनो, द्रोणमेघ पुत्र भए जिनके गुण दूगो
दिशा म व्याप रहे। केरुद्र अति सुन्दर, सब अग मनाहर,
अद्भुत लभणा की धारणगगे, सब कलाओ की पाग्यामिनी,
अति साभती भई। सम्यग्दर्शन समुक्त, आविका के व्रत पालन-
हारी, जिन शासन की वेत्ता, महा श्रद्धावन्ती तथा माह्य,
पातजलि, कोपिक बदात, याय, भीमसा चार्वाकादिक पर
शास्त्र रहस्य को जाना तथा लौकिक शास्त्र शृङ्गारादिक तिन की
रहस्य जाने नत्यस्ता मे अति निपुण, सब भेदो से मण्डित जो
सगीत को भली भाँति जाने। सुर तालके भदानुभेद के जानन
हारी, चार प्रकार के वादित्र जस केवई बजावे तैसे और कोई
न बजा सके। सकल भाषाओ मे निपुण और रस के भेद सब
शृङ्गार, हास्य, करण, वीर, अद्भुत, भयानक, रोद्र, वीभत्स
शास्त्र तिनके भेद जसे केवई जाने तसे कोई न जाने। अक्षर, मात्रा
अर गणित शास्त्र मे निपुण, गद्य-पद्य सब मे प्रवीण, व्याकरण,
छन्द, अलङ्कार, नाममाला, लक्षण, शास्त्र, तत्व, इतिहास और
चित्रकला मे अति प्रवीण तथा रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा,

नर परीक्षा, नख परीक्षा, गज परीक्षा, वल परीक्षा, वस्त्र परीक्षा सुगन्धादिक द्रव्या का निपजावना इत्यादि सब बातों में प्रवीण । ज्यामिष विद्या में निपुण, बाल बद्ध तरण मनुष्य तथा घोंड़े हाथी इत्यादि सब के इलाज जाने । मात्र ओषधादि सब में तत्पर, वद्य विद्या निधान, सब कला में सावधान महाशीलमनी, महामनोहर बुद्ध कला में अति प्रवीण, शृंगारादि कला में अति प्रवीण, विनय ही है आभूषण जाके, कला घर गुण घर रूप में ऐसी क्या और नाही । केवई के गुणों का बरान कहा तक कर । तब एक दिन पिता ने विचार कि ऐसी क्या के योग्य वर कौन ? स्वयंवर करिये तहा यह आप हा रर । तान हरि बाहुन आदि अनेक राजा स्वयंवर मंडन में बुलाय सा विभव कर समुक्त आये । तहाँ भ्रमते स ते जनक महिं दगरथ भी आये । सा यद्यपि इनके निकट राज्य का विभव नहीं तथापि रूप और गुणों पर सब राजासा त अधिक हैं । सब राजा सिंहासन पर बैठ घर ककयी का द्वारपालो ने सजन के नाम गाम गुण कहे हैं सो वह विवेकिनी साधु रूपिणी मनुष्या के लगण जानने वाली ने प्रथम तो दगरथ की ओर नेत्र रूप नीलकमल की माला डारी बहुरि कह सुंदर बुद्धि की धारणहारी जस राजहमनी दुगला के मय उठा जा राजहम उसकी घर जाय तस अनेक राजासा के मध्य बैठा जो दगरथ ताकी ओर गई । सो भान मासा तो पहले ही डारी हुती घर द्रव्य रूप जा रत्नमाला सो भी लोकाचार के अथ दसरथ के गले में डारी ।

इस पर कयक नप ज पायवन बठे हुत त प्रमत्त भय घर कहत भये कि जसे क्या थी तमा ही योग्य वर पाया घर कयक बिलस होय अपने देग उठ मय घर कयक ज तनि डीठ थे ते क्रोधायमान होय युद्धको उद्यमी भये और कहते मय ज बड़े बड़ वन के उपजे घर महाशक्ति के मणित ऐसे नपतिन को तजकर

प्राचीन हिन्दी गद्य-दर्शन

ककई की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा धीरता

उत्तर दिशा विष एक बौतुव मंगल नामा नगर, ताके पवत समान ऊँचा बाट तहा राजा शुभमति नाम मात्र नही यथाथ शुभमति ही है, गावा राणी पृथुथ्री गुण रूप आभरणो से मडिन ताके बेकई पुत्री द्रोणमथ पुत्र भए जिनके गुण दशो दिशा मे व्याप रहे। बेकई अति सुन्दर, मव अग मनोहर, अद्भुत लशणा की धारणहारी सब कलाआ की पारगामिनी, अति शाभनी भई। सम्यकदशन समुक्त, आबिका के त्रत पालन-हारी, जिन शासन की वत्ता, महा अढावन्ती तथा साहस्य, पातजनि वशपिक बंदात, पाय, मीमासा, चार्वाकादिक पर शास्त्र रहस्य की गाता तथा लौकिक शास्त्र श्रुद्धारादिक तिन की रहस्य जान नत्यकला मे अति निपुण, सब भेदा से मण्डित जो संगीत का भली भाँति जाने। मुर, तालके भेदानुभेद के जानन हारी चार प्रकार के वादित्र जस बेकई बजावे तसे और कोई न बजा सके। सकल भाषाओ मे निपुण और रस के भेद नव-श्रुद्धार, हास्य, करुण वीर, अद्भुत, भयानक, रीद्र, धीमत्स शात तिनके भेद जसे बेकई जाने तस कोई न जाने। अक्षर, मात्रा और गणित शास्त्र मे निपुण, गद्य पद्य सब मे प्रवीण, व्याकरण, छंद अलङ्कार, नाममाता, लक्षण, शास्त्र, तक, इतिहास और चित्रकला मे अति प्रवीण तथा रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा,

नर परीक्षा, गन्ध परीक्षा, गज परीक्षा, वक्ष परीक्षा, वस्त्र परीक्षा, सुगन्धादिक द्रव्यों का निपजावना इत्यादि सब बातें म प्रवीण । ज्यादातर विद्या में निपुण, बाल बद्ध तरुण मनुष्य तथा घोड़े हाथी इत्यादि सब के इलाक़ जान । मात्र औषधादि सब में तत्पर, बड़ा विद्या निवान सब कला में सावधान महाशीलवन्ती, महामनोहर युद्ध कला में अति प्रवीण शूरादि कला में अति प्रवीण, विनय ही है आभूषण जाके कला घर गुण घर रूप में ऐसी क्या और नाही । केई के गुणों का वणन करना तक कर । सब एक जिन पिता ने विचारा कि ऐसी क्या के योग्य घर कौन ? स्वयंवर करिये तब यह आप ही घर । ताने हरि वाहन आदि अनेक राजा स्वयंवर मंडप में युनाय मा विभक्त कर समुक्त आये । तहाँ भ्रमने से ते जनक सहित दण्डरथ भी आये । सो यद्यपि इनके निकट राज्य का विभव नहीं तथापि रूप और गुणों पर सब राजाओं में अधिक है । सब राजा सिंहासन पर बैठ घर कन्यो को द्वारपाली ने सबन के नाम आन गुण कहे हैं सो वह दिवेदिनी माधु मणिणी मनुष्या के सक्षण जानने वाली ने प्रथम तो दण्डरथ की ओर नेत्र रूप नीलकमल की माला डारी बहुरि के सुन्दर बुद्धि की धारणहारी जस राजहमनी बुगला के माय उठा ना राजहमन सबी घर आय नसे अनेक राजाओं के मध्य बठा जो दण्डरथ ताकी ओर गई । सो भाव माला तो पहले ही डारी हुनी घर द्रव्य रूप का रत्नमाला सो भी लोहाचार के अथ दण्डरथ ने गन में डारी ।

इस पर कयक नर जे मायबन बैठ हते त प्रमत्त भये घर कहत भय कि जस क्या थी तैसा ही योग्य घर पाया घर कयक विलखे होय अपन देग उठ गये घर कैयक ज अनि दीठ थे ते क्रोधायमान होय मुठको उद्यमी भये और कहत भय ज बड़े बड़े वग के उपजे घर महाक्रुद्धि के मण्डित ऐसे नृपतिन को तजकर

यह कन्या नाही जानिये भुल जिसका ऐसा यह विद्वशी ताहि
 नस वरे । ग्याटा है अभिप्राय जाया ऐसी कन्या है तात ता
 विदेगी का यहाँ से काढ कर कन्या के केश पकड कर बलात्कार
 हर ला । एमा कहकर व दुष्ट कयक युद्ध का उद्यमी भए । तब
 राजा शुभमति व्याकुल होय दशरथ को कहता भया—' ह भव्य !
 मैं इन दुष्टों का निवार हूँ तुम इस कन्या का रथ चढाय अत्र
 जाओ । जसा समय दक्षिय तसा करिय । सब राजनीति म यह
 बात मुख्य है ।

या भीति जय दशमुर न कहा तब राजा दशरथ अत्यन्त धीर
 बुद्धि ह जिनकी, हँसकर बहते भये—हे महाराज ! आप निश्चिन्त
 रहा । देखा म इन सबन को दशो दिशा को भगाऊँ । ऐसा कहकर
 आप रथ विपै चढ अत्र कवाई का चढाय लीनी, कैसा है रथ ?
 जाव महामनोहर अस्त्र जु हैं । वसे हैं दशरथ ? माना रथ पर
 चढे शरद अश्रु व सूय ही हैं अत्र कवाई घाटा की बाग सम्भारती
 भई । कमी है कवाई ? महापुरुषाथ के स्वरूप को घरे युद्ध को
 मूर्ति ही है । पति म विाती करती भई । ह नाथ ! आपकी
 आत्मा होय गर जावी मत्यु उदय आई होय ताही की तरफ रथ
 चलाऊँ । तब राजा कहते भये वि ह प्रिये ! गरीबा के मारन
 कर कहा ? जा या मन सेना का अधिपति हेमप्रभ है, जाके तिर
 प चन्द्रमा सारिया सफ छत्र फिर हैं ताही की तरफ रथ
 चला । हे रण पण्डित ! आज मैं इस अधिपति का ही मार्गगा ।

जब दशरथ ने ऐसा कहा तब वह पति की आज्ञा प्रमाण
 बाही की तरफ रथ चलावती भई । वसा है रथ ? ऊँचा है,
 सफद है छत्र जाव अर आरक्त रूप हैं महाध्वजा जावी, रथ
 विषय दाना दम्पति दव रूप विराजे हैं इनका रथ अग्नि समान
 है । जे या रथ की ओर आये व हजार पतंग की नाई भस्म

तहाँ सब राणीनि मध्य राजा दण्ड्य बँवई तँ कहते भय
 न द्रव्यनी । तर गत म जो वस्तु की अभिलाषा होय सो माग ।
 जा त माग सार्द देऊँ । ह प्राणप्यागी । तो मो मैं प्रति प्रमत्त
 भया है जो तू प्रति विनाश म उम रण म रय का न प्रेम्ती तो
 एके साथ एते करो भाये थे तिनको मैं कसे जीतना ? उर रात्रि
 का प्रधकार जगत म व्याप रहा है जो धरगु सारिता सारणी
 न होय तो ताहि मूय कम जीत ? या भाँति कवई ने गुण बरण
 राजा ने रिये, तत्र वह पतिव्रता सज्जा क भार तर मयोमुख
 हागई । गता ने बहुरि कही, तब कवई ने विनती करी-हे नाथ ।
 मरा घर आगरे घरोहर रह, जिम समय मेरी इच्छा होयगी ता
 समय लूँगी । तब राजा प्रति प्राम्न होय कहने भये-हे वसन
 बदनी मृगायनी, द्येत श्यामता, धरक्तता य तीन वरा को
 घरे, अद्भुत है तत्र जान अद्भुत बुद्धि तेरी, महा तरपति की
 पुत्री, प्रति नय की वत्ता, मय काल की परागामिनी, सय
 भोगोपभाग की निधि तरी प्रायना मैं धराहर राखी, तू जब
 जी चाह मो ही मैं दूँगा । अर सब ही राज लोक कौनई को
 देस हृष का प्राप्त भय अर चित्त मे चित्तवत भय, यह अद्भुत
 बुद्धि विधान है मो कौई अपूर्व वस्तु माँगगी अल्प वस्तु क्या
 माँग ?

प्रश्नावली

- १—कवई का जन्म कहाँ हुआ ? उसके माता पिता के सम्बन्ध
 में आप क्या जानते हैं ?
- २—कवई के गुण अपन शत्रुओं में वगन कीजिये ?
- ३—कवई का विवाह किस के साथ हुआ और कसे ?
- ४—कवई के विवाह के पश्चात् युद्ध क्यों हुआ ? किसके साथ
 हुआ ? कवई ने जो रण कुशलता दिलावाई उसका वरण
 कीजिये ?
- ५—कवई के जीवन से आप को क्या दिक्षा प्राप्त होती है ?

दीपावली



कार्तिक कृष्ण अमावस्या के सुप्रभात में बिहार प्रान्त स्थित पावापुरी के पावन उद्यान से भगवान महावीर प्रभु ईस्वी सन् से ५२१ वर्ष पूर्व सम्पूर्ण कम शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख अनन्त शक्ति आदि अनन्त गुणों को प्राप्त कर मुक्तिधाम को पहुँच थे। उस आध्यात्मिक स्वतंत्रता की पुण्य स्मृति में प्रदीप पक्षियों के प्रकाश द्वारा यह विराट विश्व भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर अपनी आत्मा का निर्वाणोन्मुख बनाने का प्रयत्न करता है।

प्रसिद्ध जन ग्रन्थ हरिवंश पुराण से ज्ञात होता है कि भगवान महावीर न सवर्णा का उपलब्धि के पश्चात् भव्य-वत् को नखोपदेण दे पावा नगरी के मनोहर नामक उद्यान युक्त क्षेत्र में पधार कर स्वानि नम्र के उन्मूलन पर कार्तिक कृष्ण की सुप्रभात की शुभ उला में अष्टादश वर्षों का नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया उस समय दिव्यात्माओं ने प्रभु की पूजा की और अत्यन्त दीप्तिमान जलती प्रदीप पक्षि के प्रकाश से आकाश तब को प्रकाशित करती हुई पावा नगरी सुशोभित हुई। सम्राट श्रेणिक आदि नरेन्द्रों ने अपनी प्रजा के साथ महान् निर्वाणोत्सव मनाया। उसी समय से मानव समाज द्वारा प्रनिवर्ण भगवान महावीर जिनेन्द्र के निर्वाण की अत्यन्त आदर तथा श्रद्धा पूर्वक नवघ (लाडू) से पूजा की जाती है। अपने मकानों की सफाई करके उनको धूप सजाते हैं। परस्पर सग सम्बन्धियों और

जो भक्तान का नक्का बसा होना है, बाजार में विकने को आती हैं, वह भगवान महावीर के समवासरण का ही प्रतिरूप है। भगवान ने जिम समय उपदेश दिया था, उसमें सभी जाति और वर्ग ने मनुष्य पशु पक्षी आदि विद्यमान के और उनके एवं स्थान पर एवप्रित होने के लिए समवासरण की रचना की गई थी, उसी समय समवासरण की प्रसिद्धाया 'हठरी' बाजार में विकने के लिये आती है, जिसे लोग अपने घरों को निषा पुना कर उसमें सजोहर रखते हैं।

इस प्रकार यह त्यौहार जनियो का ही सिद्ध होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है जनता लाग इस त्यौहार को मना ही नहीं सकते या मनाते ही नहीं हैं। सब लाग इस त्यौहारका पूर्ण उल्लास के साथ मनाते आ रहे हैं क्योंकि भगवान महावीर अपने फात की दिव्य विभूति थे। वह सबज्ञ थे, भीतराणी के और हितापदेशी थे। ससार उनसे द्वारा उपरुन, प्रभावित और लाभान्वित हुआ दीपावली का त्यौहार भगवान महावीर स्वामी की सयगता का परिचायक है उन्होंने आत्म पवित्रता पर विशेष बल दिया। लोगों को आरम्भ में मोक्ष रानी लक्ष्मी की पूजा का विधान रखा। काल दोष के कारण लोगो की मनावृत्ति दूषित हुई। वे द्रव्यपूजा और याचना करने लग। जूमा सलन लग और रात भर जागरण करने लग ताकि लक्ष्मीदेवी जब रात में उनके घर में द्वार पर पधारे तो उन्हें जाग्रत यासनक पाकर उठ कृताथ करे। परन्तु भाव यह था कि हम लोग मोक्ष रूपी लक्ष्मी की पूजा करके भगवान के निर्वाण को पुण्य तिथि को मनाव और मोक्ष मार्ग पर आरुढ हो।

आज भी दीपमालिका का यह परम पवित्र मंगलमय दिवस भगवान महावीर के निर्वाण की पुण्य स्मृति को जाग्रत करता है। समग्र भारत में दीपमालिका की मायता भगवान महावीर के व्यक्तित्व के प्रति राष्ट्र समादर के परम्परागत भाव को स्पष्ट

उत्पन्न होती है ।

इतिहास का उज्ज्वल आलोक दीपावली का सम्बन्ध भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाणसे स्पष्ट बतला रहा है । दीपावली का मंगलमय एवं आत्मिक स्वाधीनता का दिवस है । उसी दिन सध्या के समय भगवान् के प्रमुख लिप्य गौतम गणेश्वर को अवल्य लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी । इस कारण दिव्यात्माओं के साथ मानवों ने केवल नान लक्ष्मी की पूजा की थी । इस तत्त्व का न जानने वालों पर भी पूजा करके अपने को कृताय मानते हैं ।

दीपावली के उत्सव पर सभी लोग अपने अपने घरों को स्वच्छ कर उन्हें नयनाभिराम बनाते हैं । यद्यपि वे यह पत्र आत्मा का रागद्वेष दीनता दुर्बलता क्रोध, मान, माया लोभ आदि विकारां से बचाकर जीवन को उज्ज्वल प्रकाशमय तथा मद्गुण सूरभि सम्पन्न बनाने में है । यदि यह दृष्टि व्याप्त हो जावे तो यह मानव महावीर बनने के प्रकाश पूर्ण पथ पर प्रगति क्रिये चिता न रहे ।

दीपावली के दिन से बीर निर्वाण सम्बन्ध प्रारम्भ होता है । यह सब प्राचीन सम्बन्ध है । मंगलमय भगवान् महावीर के निर्वाण का अमंगल नाशक मान कर भव्य शोक अपने अपने काय दीपावली से ही प्रारम्भ करते हैं ।

कुछ लोग दीपावली के पवित्र दिवस पर जुआ-सट्टाकर गकून मनाते हैं । किसी किसी जगह लडके बच्चे

आतिशयाजी भी छोड़ते हैं । इन कुप्रथाओं को त्याग कर धार्मिक रूप में ही दीपावली का पर्व मनाना योग्य है ।

प्रश्नावली

१—दीपावली का त्योहार क्या प्रचलित हुआ और कैसे ?

२—जैन धर्माभ्यासी दीपावली का कैसे मनाते हैं ?

३—दीपावली की रात्रि में कुछ लोग अपना पता आदि की पूजा करते हैं तथा जुआ आदि खेलते हैं क्या यह ठीक है और धार्मिक क्रिया है ?

४—दीपावली का त्योहार हम क्या शिक्षा प्रदान करता है ?

५—क्या आप दीपावली मनाने के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दे सकते हैं ?



प्रातिशवाजी भी छोड़ते हैं । इन कुप्रथाओं को त्याग कर धार्मिक रूप में ही दीपावली का पर्व मनाना योग्य है ।

प्रश्नावली

- १—दीपावली का त्यौहार क्या प्रचलित हुआ और कैसे ?
- २—जन धर्मानुयायी दीपावली को कैसे मनाते हैं ?
- ३—दीपावली की रात्रि में कुछ लोग रुपया पैसा आदि की पूजा करते हैं तथा जुमा आदि खेलते हैं क्या यह ठीक है और धार्मिक प्रिया है ?
- ४—दीपावली का त्यौहार हम क्या शिक्षा प्रदान करता है ?
- ५—क्या आप दीपावली मनाने के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दे सकते हैं ?



